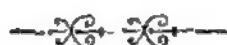
पद्य पुष्पाञ्जलि

लेखक

श्रीयुत पाण्डेय लोचन प्रसाद शर्म्मा



प्रकाशक

नारायण प्रसाद अरोड़ा, बी. ए.

पटकापुर, कानपुर.

बाबू अयोध्या प्रसाद भार्गव के प्रबन्ध से
स्टार प्रेस कानपुर में मुद्रित

प्रथम बार २०००

१९७२

मूल्य [illegible] आना



समर्पण

सज्जन सुहृद् निज मातृ भाषा का जिन्हें अनुराग है
भाता जिन्हें प्रिय देश की हित-साधना का राग है
सम्पन्न है रस भाव से जिनकी विमल हृदयस्थली
सादर समर्पित है उन्हें यह पद्य की पुष्पाञ्जली



निवेदन ।

स संग्रह को छापने की आज्ञा देकर पाण्डेय लोचन प्रसाद जी ने मुझ पर बड़ी कृपा की है। साथही मैं श्रीमान् राय देवीप्रसाद जी पूर्ण बी. ए., बी. एल. का भी बड़ाही कृतज्ञ हूं जिन्होंने इसकी भूमिका लिखकर मुझे बहुत अनुग्रहीत किया है ।

इस संग्रह के पद्यों को पढ़ कर अथवा सुन कर मेरे प्यारे भाई, भारतीय युवकों के हृदय में यदि थोड़ी सी भी देशभक्ति उत्पन्न होगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा ।

प्रकाशक

सूची।

भूमिका।





विद्या रसिकों में श्रीयुत पाण्डेय लोचन प्रसाद जी का नाम हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध ही है। विद्या रसिक होने के साथ २ देशानुराग और कवित्व शक्ति के गुण भी परमेश्वर ने उनको दिये हैं, यही कारण है कि अब तक वह अपनी कई उपयोगी पुस्तकें हिन्दी साहित्य को उपहार दे चुके हैं। अब उनकी बहुतसी कविताओं का संग्रह देश-हित-गर्भित साहित्य के प्रेमी बाबू नारायण प्रसादजी अरोड़ा "पद्य पुष्पाञ्जलि" के नाम से छपवा रहे हैं। कवि और प्रकाशक दोनों का अनुरोध है कि मैं ही उक्त पुस्तक की भूमिका लिखूं, इस अनुरोध को सहर्ष स्वीकार करके मैं इतनाही लिखना पर्य्याप्त समझता हूं कि इस संग्रह में अनेक पद्यों से देश हित का ललित राग गाया गया है, ईश्वर की प्रार्थना देश भक्ति के भाव से परिपूरित है, गो जाति की अवस्था पर करुणा का प्रकाश किया गया है, दुर्भिक्ष और दरिद्रता के सताये दीन भारत वासियों के प्रति आर्द्र हृदय से सहानुभूति दरसाई गई है, "हमारी अस्वस्थता" पर भी विचार किया गया है, "चीनी" सम्बन्धी पद्यों में "स्वदेशी" की भी पूरी झलकहै, शिक्षा, हिन्दू विश्वविद्यालय,



शिवाजी, हिन्दी, राष्ट्र भाषा, इत्यादि लेखों द्वारा विविध प्रकार से पाठकों का मनोरञ्जन किया गया है और देश सेवा और उन्नति-उद्योग का उपदेश दिया गया है। मैं आशा करता हूं कि ऐसी पुस्तकों के आदर से देश-हितैषियों का उत्साह वर्द्धन समझ कर हिन्दी पद्यसाहित्य के प्रेमी इस पुस्तक का प्रेम से स्वागत करेंगे। किंबहुना?

सोरठा—चन्द्र नदी निधि भान फागुन कृष्णा पञ्चमी
पुस्तक गुन पहिचान लिखी भूमिका पूर्ण यह

देवी प्रसाद

कानपूर.

पद्य पुष्पाञ्जलि



भारत-स्तुति ।

तू जन्मभूमि है, भारत-भूमि हमारी ।
हैं तेरी ही सन्तान सकल हम प्यारी ॥
तू पुण्य-भूमि है, सुर नर मुनि वन्दित है ।
तू कर्म-भूमि है, मुक्ति-सुधा सिञ्चित है ॥
तू धर्म-भूमि है, दया-दान-दीक्षित है ।
तू आर्य-भूमि है, सभ्य शिष्ट शिक्षित है ॥
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी ।
जय जय जय भारत-भूमि हमारी प्यारी ॥ १ ॥

मुनि-गण मन-रञ्जन पुण्य तपोवन तू है !
विष-विषय-विभंजन पावन अञ्जन तू है !
नय-नीति-निपुणता-निधि नव नागर तू है !
स्वातन्त्र्य, शान्ति, सुख-शासन-सागर तू है !
साहित्य-शिल्प-समुदय शिक्षा-सर तू है !
शुचि-सृष्टि-सार सौरभ-शोभाकर तू है !
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी ।
जय जय जय भारत-भूमि हमारी प्यारी ॥ २ ॥

सजला सफला शुचि शस्य-श्यामला तू है।
अचला सबला सद्धर्म-निश्चला तू है॥
तू अन्न-पूरणा अन्न-शाक का घर है।
तू स्वर्ण रत्न मुक्ता मणि का आकर है॥
तू आलय है हे भव्य ! भेषजामृत का।
तू निर्झर है सुमधुर शुचि गोरस घृत का॥
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी।
जय जय जय भारत-भूमि हमारी प्यारी ॥ ३ ॥

तू देव-दुर्लभा वीर-जननि विख्याता।
तू असुर दमन को शमन तुल्य है माता॥
हैं मन्त्र-सिद्ध मुनि, साधु, तपस्वी तुझ में।
हैं सबल सुकवि विद्वान यशस्वी तुझ में॥
हैं भीम तुल्य बल वीर धीर नर तुझ में।
हैं अर्जुन सम विख्यात धनुर्धर तुझ में॥
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी।
जय जय जय भारत-भूमि हमारी प्यारी ॥ ४ ॥

तेरे गुण- गण भू-कण सम अगणित जननी !
है शिष्य रूप तेरे यह सारी अवनी॥
हम सुखी होयँगे माता ! तेरे सुख में।
हम रुदन करेंगे दुख से तेरे दुख में॥
तेरे पद पूजन हित हम तन मन देंगे।
हम साभिमान तेरे गुण गान करेंगे॥
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी।
जय जय जय भारत-भूमि हमारी प्यारी ॥ ५ ॥

मेरी जन्मभूमि।

जय जय मम जनम भूमि स्वरगहुँ तें प्यारी ॥ टेक ॥

शोभित सुन्दर सरूप, अद्भुत आभा अनूप
दमकत जिमि जात रूप तीन लोक न्यारी ॥ १ ॥ जय जय०

कूकत पिक, नचत मोर, सरिता जल करत शोर,
वन गिरि सुषमा अथोर नयन हृदय हारी ॥ २ ॥ जय जय०

लभि मृदु तृण मधुर नीर, बिहरत गो महिष भीर
घन वन भ्रमि श्रवत छीर बुध बल वपुकारी ॥ ३ ॥ जय जय०

डोलत सुरभित समीर बोलत खग विविध गीर
घोलत मधु भ्रमर भीर सुमन वन विहारी ॥ ४ ॥ जय जय०

घन घन वन गज विहार करत मुदित करि चिंघार
क्रीड़त जल बीच धार विजन विपिन चारी ॥ ५ ॥ जय जय०

गेहूं, सन, तिल, जुआर, अलसी, मधु, लाख, चार
उपज धान जहँ अपार जग जन दुखहारी ॥ ६ ॥ जय जय०

रेशम, कोषा, कपास, सुरस ईख अनन्नास
लभि जहँ विहरत सहास, सुखयुत नर नारी ॥ ७ ॥ जय जय०

मिलत सुभग हेम हीर, मधुर, सन्तरा, उर्वीर,
बनत जहाँ चारु चीर, अचरजमय भारी ॥ ८ ॥ जय जय०

दण्डक वन मुनि निवास, प्रेम पुण्य करि प्रकाश
त्रिविध ताप करत नाश हरि पद-रज धारी ॥ ९ ॥ जय जय०

विद्या, वैभव, विभूति, प्रतिमा, पाण्डित्य, पूति
शुभ दया सहानुभूति, विविध सुगुन धारी ॥ १० ॥ जय जय०
विविध चित्र मय सुगात, जहँ अगम गुहा सुहात
जग गुरु-गौरव दिखात, विस्मय मुद कारी ॥ ११ ॥ जय जय०

जय हिन्दुस्तान।

जय विद्या-बल-बुद्धि-निधान।
जन्म भूमि गुण-गौरव-खान ॥
शान्ति सौख्य का वास स्थान।
जय जय पावन हिन्दुस्तान !! ॥ १ ॥

सब सुख साधन-पूर्ण महान।
तू है जग में स्वर्ग समान ॥
तुझ में जन्म ग्रहण के काज।
लालायित हैं देव-समाज ॥ २ ॥

तेरा रुजहारी जल-वायु।
वर्धित करता है जन-आयु ॥
तेरे अन्न, शाक, घृत, दुग्ध।
किसके प्राण न करते मुग्ध ॥ ३ ॥

तेरा विद्यामृत कर पान।
मूर्ख हुए शिक्षित विद्वान् ॥
गुरुता तेरी अपरम्पार।
शिष्य रूप तव है संसार ॥ ४ ॥

तेरी कौशल कला अनूप।
निर्धन को करती है भूप॥
तेरे स्वर्ण, रत्न, मणि धान।
हरते हैं कुवेर का मान॥ ५॥

कर देता तेरा वेदान्त।
विषय भ्रान्त आत्मा को शान्त॥
नर को दे कर भक्ति सयुक्ति।
प्राप्त कराता दुर्लभ मुक्ति॥ ६॥

तेरे बल विक्रम अवलोक।
होते विस्मित तीनों लोक॥
हम को है तेरा अभिमान।
हम हैं तेरी प्रिय सन्तान॥ ७॥

तेरे पद पूजन के काज।
तज कर कुत्सित स्वार्थ समाज॥
सौंपेंगे हम अपने प्राण।
नित्य करेंगे तव गुण गान॥ ८॥

लख तेरे आनन्द-विधान।
हम सब होंगे सुखी महान॥
तेरे दुख में हम हो म्लान।
रुदन करेंगे दुःखित प्राण॥ ९॥

शोभित तव सिर-मुकुट समान।
पूज्य हिमालय औषधि-खान॥
पार्श्व देश में शोभित रम्य।
ब्रह्म पुत्र, नद सिन्धु अगम्य॥ १०॥

रत्नाकर नित करता नाद।
चुम्बन करता है तवपाद॥
कटि में तेरे पावन नाम।
शोभित विन्ध्याचल छवि धाम॥ ११॥

महानदी शुचि-सलिल सुशान्त।
विमल नर्मदा नित्य प्रशान्त॥
सरयू गोदावरी गंभीर।
पातक हारी जिनका नीर॥ १२॥

गङ्गा यमुना आदि अनेक।
नदियां सुभग एक से एक॥
प्रक्षालन करते तव अङ्ग।
दिखारहीं हैं लहर-उमङ्ग॥ १३॥

कालिदास भवभूति समान।
कविवर तुझ में हुए महान॥
भीमार्जुन गाङ्गेय समान।
रथी हुए तुझ में बलवान॥ १४॥

कर्ण सदृश दानी विख्यात।
भारत! हुए तुझी में जात॥
हरिश्चन्द्र से सत्य प्रतिज्ञ।
जात हुए तुझ में ही विज्ञ॥ १५॥

शिवि दधीच पुरु नृप आदर्श।
धर्म हित तज प्राण सहर्ष॥
हरा इन्द्र का जिनने गर्व।
हैं वे सुत तेरे ही सर्व॥ १६॥

ध्रुव, चैतन्य, भक्त, प्रह्लाद ।
जैमिनि, गौतम, कपिल, कणाद ॥
करता जग जिनका गुण-गान ।
हैं वे सब तेरी सन्तान ॥ १७ ॥

पाणिनि, वाल्मीकि शुभनाम ।
शङ्कर, मनु, भास्कर गुणधाम ॥
व्यास देव शुक विमल चरित्र ।
सब की है तू भूमि पवित्र ॥ १८ ॥

रामचन्द्र की है तू भूमि ।
कृष्णचन्द्र की है तू भूमि ॥
सुख स्वतन्त्रता की तू भूमि ।
धर्म धीरता की तू भूमि ॥ १९ ॥

हमको है तेरा अभिमान ।
हम सब हैं तेरी सन्तान ॥
तेरे हित हैं जीवन प्राण
जय जय पावन हिन्दुस्तान !! ॥२०॥



प्रार्थना ।

आइए हे भाइयो ! यह प्रार्थना सुन जाइये ।
सुन भुला मत दीजिये कुछ ध्यान इसपर लाइये ॥
निज अधोगति पर यहां है आज कुछ कहना हमें ।
पूर्व गौरव स्मरण कर है शोक में बहना हमें ॥ १ ॥

कौन हैं हम भाइयो ! किनके विमल सन्तान हैं ?
क्या न निजता ज्ञान से पूरित हमारे प्राण हैं ?
क्या हमारी योग्यता है ? क्या हमारा धर्म है ?
विश्व में करणीय उत्तम क्या हमारा कर्म है ? ॥ २ ॥

मनुज क्या सुर दनुज के श्री पूज्य हमहीं आर्य थे ।
बुद्धि विद्या में न हम किस देश के आचार्य थे ॥
अनुकरण के योग्य मान्य न क्या हमारे कार्य थे ।
नृप वचन सम क्या न निज आदेश सबको धार्य थे ॥ ३ ॥

देश भर छाया हुआ सुख शान्ति पूरित हर्ष था ।
मर्त्य होकर अमरतामय पुण्य भारतवर्ष था ॥
स्वर्ग से भी सुखद सुन्दर यह हमारा देश था ।
खोजने पर भी न मिलता अघ रुजों का लेश था ॥४॥

स्वर्ग सुख थे तुच्छ गिनते देवगण लखकर जिसे ।
प्राप्त था सौभाग्य ऐसा और भूतल पर किसे ?
देव दुर्लभ इस मही में जन्म धारण के लिए ।
हो रहे सब काल थे सुर वृन्द लालायित हिए ॥ ५ ॥

रोग दुख दुष्काल का न कभी कहीं भी नाम था।
शान्ति सुख से देश में प्रत्येक घर था ग्राम था॥
कृषक थे सम्पन्न सब विधि मुक्त हो ऋण भार से।
थी प्रजा करती न हाहाकार अत्याचार से॥ ६॥

गाय महिषी सकुल निर्भय मोद युत घर घर रहीं।
पय दही घृत तक्र की यह भूमि वर निर्झर रही॥
पादपों पर खग वनों में मृग हृदय हरते रहे।
प्रकृत हिंसा तज विविध पशु एक में चरते रहे॥ ७॥

थे सुधोपम फल वरों से युक्त तरुवर सोहते।
सुमन सौरभ दान से थे प्राण सबके मोहते॥
भ्रमर करते गुञ्ज पिकवर कुञ्ज में थे बोलते।
घोलते श्रुति में सुधा स्वच्छन्दता से डोलते॥ ८॥

सिंह के सम शक्ति शाली छात्र गण गुरु भक्त थे।
देश के हितके लिये निज प्राण पन से रक्त थे।
पद्य कुलके सद्म थे वे जाति के अभिमान के।
गेह थे आरोग्यता के देह थे विज्ञान के॥ ९॥

ब्रह्म चिन्तन में मगन मन आर्य ऋषिगण थे सदा।
शुचि तपोवन में सहज ही प्राप्त थी सब सम्पदा॥
हवि सुरभि आरोग्य कारी पान करते क्षेम से।
भक्ष्य भक्षक भाव तज खग मृग वहां थे प्रेम से॥१०॥

समय पर होती सुखप्रद अमृत रूपी वृष्टि थी।
अन्नपूर्णा नाम से विख्यात भारत सृष्टि थी॥
थी जनों की धर्म में अनुरक्ति उज्वल निश्चला।
वीर जननी थी हमारी भूमि शस्य श्यामला॥११॥

पर समय के फेर से यह दास आता हो रही।
कुम्भकर्णी नींद, खो सर्वस्व अपना, सो रही!
हाय! जिनके शिष्य होके सभ्यता पाई नहीं।
प्राण रङ्क असभ्य कुक्षम्भरि कहाते अब वही॥१२॥

हाय खाया भ्रात कैसा समय ने पलटा बड़ा।
शान्ति सुखके स्थान में दुखका कटक भीषण पड़ा॥
हो रहे निज पूर्व गौरव-चिह्न क्रमशः लोप हैं।
सह्य हा हा! अब नहीं दुर्दैव का यह कोप है॥ १३॥

अब अहिंसा प्रेम शुचि का पुण्य आश्रम है कहां?
आज वह भय भग्मकारी मन्त्र विक्रम है कहां?
विमल तत्वज्ञान की शिक्षा अलौकिक है कहां?
त्रिकालज्ञ मुनीन्द्र कृत दीक्षा अलौकिक है कहां?॥१४॥

हाय! अब योधेन्द्र जननी वह अयोध्या है कहां?
आज क्या रवि-कुल-कमल-रवि राम राजा है यहां?
वह प्रजा-प्रियता कहां है? आज दुर्लभ सर्वथा
प्रजा रञ्जन हित सगर्भा पत्नि-वर्जन की प्रथा॥१५॥

हो गया क्यों लुप्त? वह दाम्पत्य प्रेम पवित्र है।
नेत्र सुख कर आर्य दम्पति का कहां वह चित्र है?
शान्तिमय शुचि आर्य गृह अबतो कलह का धाम है।
हाय! गृह लक्ष्मी हमारी आज हमसे वाम है!!॥१६॥

पान जननी का किया था दुग्ध जिनने सङ्ग में।
रमत हैं सोदर वही अब छल कलह के रङ्ग में॥
एक में रह नित्य छोटे से हुए थे जो बड़े।
अब वही भाई परस्पर खड्ग ले कर हैं खड़े!!॥१७॥

पुत्र तजते साथ अपने जर्जरित मा बाप का।
उचित प्रायश्चित्त करते पितृ ऋण के पाप का॥
व्याप्त घर घर कपट ईर्ष्या, कलह, मत्सर, द्वेष है।
खोजने पर भी कहीं मिलता न सुख का लेश है॥१८॥
खो गई हा हन्त! मन की अप्रतिम सब शान्ति है।
हो रहे निष्प्रभ हुई गत देह की सब कान्ति है॥
रोग बहु विधि नित हमें करते व्यथित चित क्षीण है।
काल पा कर अमृत सम औषधि हुई गुण हीनहै॥१९॥
ज्ञान में, विज्ञान में जो जाति जग में जेष्ट है।
हीन हा! कहला रही भाषा उसी की श्रेष्ट है।।
लेश लज्जा भी न आती कह रहे जो नित्य हैं।
आर्य वृन्दों के अहो! उन्नत नहीं साहित्य हैं॥२०॥
आज आविष्कार कर जो गर्व लाते हर्ष से।
प्राप्त थे वे विषय हमको गत सहस्रों वर्ष से॥
जो हमें अमरत्व के हैं तत्व हा! सिखला रहे।
क्या न वे निज बाल कौतुक ही हमें दिखला रहे?॥२१॥
शुष्क नीरस मलिन निष्प्रभ आज वृक्ष निकुञ्ज हैं।
शान्ति सुखमा नाटिका, मृत वाटिका के पुञ्ज हैं॥
मृत्यु भय से विपिन से हैं मृग विहङ्गम भागते।
देख हिंसा रति अहा! पशु वृन्द निज थल त्यागते २२
हीन हो सब भांति गोकुल दीन वाणी बोलती।
डोलती है रोग जर्जर विष हृदय में घोलती॥
घृत मलाई हो रही दुर्लभ दवाई के लिए।
पय दही रुचिकर मठा की बात कुछ मत पूछिए॥२३॥

होगयी काया पलट हा ! देखते ही देखते।
आज क्या से क्या हुआ भारत तुम्हारा श्रीपते ?
बल विभव विक्रम हुए सब नष्ट निजता खो गई।
धो गई सम्पत्ति सारी लोप विद्या हो गई ॥ २४ ॥

देश में चहुँ ओर भीषण मूर्खता बल छा गई।
दुखद निर्धनता हमारे सद्गुणों को खा गई ॥
जब हुए निर्धन कहां तक धर्म रह सकता अहो !
धर्म हीन मनुष्य पशु है पुच्छ शृङ्ग विहीन हो ॥२५॥

भूख से मरता हुआ करता नहीं है पाप क्या ?
पाप में फँस लोग हा ! पाता नहीं है ताप क्या ?
नित्त लगे बहु भांति हम सब भोगने गुरु यन्त्रणा।
यन्त्रणा दूनी मिली की मुक्ति की जब मन्त्रणा ॥२६॥

बस रहे तब मौन हो के धैर्य को धारे हुए।
निज सकल हारे हुए से विकल मन मारे हुए ॥
दैव को हम दे रहे बदनाम आठों याम हैं।
कर रहे कर से सदा पर पतनही के काम हैं ॥२७॥

जाति के अभ्युदय के आधार केवल छात्र हैं।
हीनता रूपी क्षुधा हित शुचि सुधा के पात्र हैं ॥
हो रहे कर्तव्यच्युत हैं छात्र हा ! जिस देश में।
कठिन है पाना उसे निज धर्म में या वेश में ॥२८॥

नित्य गुड़ियों की तरह माता पिता जब मोदमें।
हैं कराते ब्याह लेके सुत सुता को गोद में ॥
तब यहां दाम्पत्य सुख का वास फिर किस भांति हो।
बुद्धि, बल, विद्या, विभव युत किस तरह वह जाति हो !! २९

समय जो है वेद विधि से उपनयन संस्कार का।
गुरु कुलागम सहित विद्यारम्भ के व्यापार का॥
शान्ति मय शुचि वीर्य रक्षा का समय जो है खरा।
शिशु हृदय में हा! तभी विष विन्दु जाता है भरा ३०

अथवा कर के जन्म कन्या का जहां विद्वान भी।
बोलते हो व्यथित यह मरजाय हे हे हरि अभी॥
जो कहीं जीवित रही सकुटुम्ब हम मर जांयगे।
जन्म भर दारिद्र कन्या जन्म का फल पायँगे ॥३१॥

इस दशा में उचित शिक्षा बालिका क्या पायगी?
हाय! वह आदर्श जननी; वीर सुत कब जायगी?
पुत्र पर निज अम्ब का पड़ता अपूर्व प्रभाव है।
पुत्र का होता जननि अनुरूप प्रादुर्भाव है॥ ३२॥

हो गया अतएव दुखका स्थान हिन्दुस्थान है।
भीरु निर्बल हो रही ऋषि वृन्द की सन्तान है॥
छिप गया सब शौर्य्य, साहस पुण्य आर्यावर्त्त का।
ग्रास भारत हो गया दुर्भिक्ष दुख रुज गर्त्त का॥३३॥

क्या कहें अपनी बुराई आप कहना पाप है।
भोग हम हा! हा!! चुके क्या २ न भीषण ताप है!!!
निज करों से हम कुल्हाड़ी पैर पर हैं मारते।
चोट पहुँचे पैर में मत आश ऐसी धारते॥ ३४॥

देख कर अज्ञानता यह हँस रहा संसार है।
हा! हमारी हीनता का अब न पारावार है॥
स्वीय रिपु बनता जगत में नर कर्म ही आपही।
दुःख देते हैं नरों को घोर निज कृत पाप ही॥३५॥

विप्र मस्तक, हृदय क्षत्री, कटि वणिक, पद शूद्र हैं।
पूज्य हिन्दूजाति ! तू किस बल विभव में क्षुद्र है ?
पर घृणा, छल, कलह, ईर्ष्या, द्वेष का तू द्वार है।
आज तेरे पतन का जिससे न पारावार है ॥ ३६ ॥

हीन से भी हीन नर अस्पर्श्य अपने मित्र हों।
किन्तु अपने अङ्ग रूपी शूद्र गण अपवित्र हों ॥
दूर है छूना उन्हें ये पास आ सकते नहीं।
मिष्ट वाणी या कभी आश्वास पा सकते नहीं ॥३७॥

हा ! हमारे हेतु अतिपथ घृणित करते काम जो।
दें हमारे हेतु जीवन, लें न सुख का नाम जो ॥
प्रेम पूर्वक जो स्वयं अनुचर हमारे हो रहे।
हाय ! सह-अनुभूति तो भी वे हमारी खो रहे ॥३८॥

हो निपट निष्ठुर तथैव मलीन पशु अज्ञान भी।
नित्य के धिक्कार से आता निकट नहि स्वान भी ॥
शूद्र ऊंची जाति के तब नित्य के दुतकार से।
अर्चना कबतक करें उनके पदों की प्यार से ॥३९॥

सर्वदा व्यवहार में सम भाव होना चाहिए।
उभय कुल में निष्कपट सद्भाव होना चाहिए ॥
ईश के दृग में सदा सबका बराबर स्वत्व है।
विश्व में स्वातन्त्र्य का पावन परम यह तत्व है ॥४०॥

शूद्र होते नीच भी हैं बन्धु हो अपने सदा।
दूर करना धर्म है निज बन्धु गण की आपदा ॥
बन्धु का बल विश्व में होता अतुल है हे सखे !
प्रेम शूद्रों से न ऊँची जाति क्यों तब फिर रखे ॥४१॥

योजनों के दूर पर लख बन्धु को निज क्षेम से।
मत्त होते कुमुद सा नव बल अलौकिक प्रेम से॥
दूर दर्शन मात्र से निज बन्धु के दुख शोक हों।
बन्धु सम सच्चे सहायक मिल नहीं सकते अहो! ॥४२॥

तुच्छ तुष से रिक्त हो कर नाज जम सकता नहीं।
छिद्र लघु होते हुए भी बन्ध थम सकता नहीं॥
काल से भी रहित होकर तरु न जी सकते कभी।
अङ्ग में से अल्प अन्तर नष्ट कर देता सभी॥४३॥

शूद्र गण को नीच कह कर ऊँच हम होने चले।
काट पद को अन्य अवयव रह कभी सकते भले!
पाद पर ही देह के प्रत्यङ्ग का सब भार है।
विपद्-तारण सौख्य-कारण का यहीं आधार है॥४४॥

पांव कटते लोग हा! हा!! पङ्गु जो हो जायगा।
विकट जीवन युद्ध में फिर विजय कैसे पायगा॥
युक्त हो सब अङ्ग से भी आज हिन्दूजाति तू।
देख पीछे है पड़ी भव-दौड़ में किस भांति तू? ॥४५॥

त्याग कर के छल घृणा कर नित्य पालन कर्म का।
हास दिन २ हो रहा है देख शाश्वत धर्म का॥
प्राप्त बल विद्या विभव सम्पत्ति सुख होंगे सभी।
निरत रह कर्त्तव्य में गत रोग दुख होंगे सभी॥४६॥

उचित अपने कर्म का पालन करो हे भाइयो!
यातना कट जायगी तज धैर्य मत घबड़ाइयो॥
दु:ख के सङ्गीत को बस आज से विसराइयो।
सुख तथा स्वाधीनता का गान सुख से गाइयो॥४७॥

(२)

ऐक्य. प्रेमोपकार, प्रखरतप तथा धैर्य्य धर्मानुरक्ति:
स्वातन्त्र्य, स्वावलम्ब, प्रणय अब कहाँ, हा ! कहाँ देश-भक्ति ?
थी जो वीरप्रसू हा ! भरत-भुव वही, हो गई दास-माता
आर्यों में आर्यता का अहह ! अब न है, चिन्ह कोई लखाता

(३)

भीष्म, द्रोण प्रतापी रिपु-कुल-मद-हा पार्थ वीर प्रधान
राणा श्रीमत्प्रताप प्रकट जगत में, श्री शिवाजी समान
योद्धा स्वातन्त्र्य प्रेमी सुगुणयुत बली, उद्यमी सच्चरित्र
होता है आज कोई न भरत-भुव में, जात क्यों ? हाय मित्र !

(४)

क्या से क्या हो गई हैं भरत-सुत सुता आज, आश्चर्य घोर
देवों के तुल्य जो थे निशिचर सम वे हो गये हैं कठोर
ईर्ष्या, आलस्य, हिंसा, छल, मद, शठता, फूट, अज्ञान, द्वेष
छाये हैं देश में हा ! नहिं अब करुणा का रहा लेश शेष

(५)

कैसी निःसत्वकारी प्रचलित हम में, बाल-व्याह प्रथा है
हा ! हा ! सर्वस्व हारी प्रतिफल, जिसको देख होती व्यथा है
क्षीणायु प्राण-रक्त व्यथित कर हमें, रोग से फांस सर्व
खाया सारे गुणों को गिन गिन इसने तोड़ के आर्य-गर्व

(६)

भोगें अल्पावयस्का अति मृदु ललना, हाय ! वैधव्य पीड़ा
होती हैं भ्रूणहत्या छिप २ नित ही, पै हमें है न व्रीड़ा
अत्याचार प्रसार प्रति घर अब तो हो रहा है महान
तो भी हा ! मूर्खता में पड़ हम इनके त्याग में दें न ध्यान

वीर्य ही है आयु इससे वीर्य की रक्षा करो।
वीर्य ही से लभ्य हैं चारों पदार्थ सुहृद्वरो!
स्वास्थ्य ही संसार में सारे सुखों का मूल है।
सौख्य सामग्री, बिना आरोग्यता के सूल है ॥४८॥

एक मग में एक मति से साथ हो कर सब चलें।
हों न हम कर्त्तव्य-च्युत रवि भूमि चाहें तो टलें॥
जान भाई तुल्य चारों वर्ण हिलमिल के गले।
हम करें जय-गान मा का प्राप्त होंगे फल भले ॥४९॥

टेक पूर्वक मान मर्यादा हमारी हम रखें।
सुख तथा स्वाधीनता के फल सुधोपम हम चखें॥
फूट, मद, आलस्य सह तज कर विषय की वासना।
कर्म में हों निरत, होगी पूर्ण मन की कामना ॥ ५० ॥

हमारा अधः पतन।

(१)

देखो तो हो गया है पतन यह अहा! भ्रात! कैसा हमारा।
विद्या, वीर्य, प्रतिष्ठा, धन अब न रहे, खो गया गर्व सारा॥
निन्दा होती हमारी नित अब हमको, श्वान देता न मान।
तो भी लज्जा ज़रा भी नहिं, हम सब हैं ग्रस्त शुष्काभिमान॥

(२)

ऐक्य, प्रेमोपकार, प्रखरतप तथा धैर्य्य धर्मानुरक्ति;
स्वातन्त्र्य, स्वावलम्ब, प्रणय अब कहाँ, हा ! कहाँ देश-भक्ति ?
थी जो वीरप्रसू हा ! भरत-भुव वही, हो गई दास-माता
आर्यों में आर्यता का अहह ! अब न है, चिन्ह कोई लखाता

(३)

भीष्म, द्रोण प्रतापी रिपु-कुल-मद-हा पार्थ वीर प्रधान
राणा श्रीमत्प्रताप प्रकट जगत में, थी शिवाजी समान
योद्धा स्वातन्त्र्य प्रेमी सुगुणयुत बली, उद्यमी सच्चरित्र
होता है आज कोई न भरत-भुव में, जात क्यों ? हाय मित्र !

(४)

क्या से क्या हो गई हैं भरत-सुत सुता आज, आश्चर्य घोर
देवों के तुल्य जो थे निशिचर सम वे हो गये हैं कठोर
ईर्ष्या, आलस्य, हिंसा, छल, मद, शठता, फूट, अज्ञान, द्वेष
छाये हैं देश में हा ! नहिं अब करुणा का रहा लेश शेष

(५)

कैसी निःसत्वकारी प्रचलित हम में, बाल-ब्याह प्रथा है
हा ! हा ! सर्वस्व हारी प्रतिफल, जिसको देख होती व्यथा है
चीणायु प्राण-रङ्क व्यथित कर हमें, रोग से फांस सर्व
खाया सारे गुणों को गिन गिन इसने तोड़ के आर्य-गर्व

(६)

भोगें अल्पावयस्का अति मृदु ललना, हाय ! वैधव्य पीड़ा
होती हैं भ्रूणहत्या छिप २ नित हीं, पै हमें है न व्रीड़ा
अत्याचार प्रसार प्रति घर अब तो हो रहा है महान
तो भी हा ! मूर्खता में पड़ हम इनके त्याग में दें न ध्यान

(७)

हे हे भाई ! न होगा जब तक घर के दुर्गुणों का सुधार।
छूटेगा स्वप्न में भी तब तक न कभी राष्ट्र का दुःख-भार
हो के निःसत्व रोगी धन-बल-रहिता सन्तति ज्ञान-रङ्क।
पावेगें दुःख नाना तब तक जग में शीश पै ले कलङ्क॥

हमारी दशा।



प्रभुवर ! दनुजारे ! दुःख दारिद्रय हारी !
अहह यह दशा है हो रही क्यों हमारी ?
हम धन-बल-विद्या-बुद्धि-विज्ञान वान।
इस तरह हुए क्यों दीन, हा ! हा ! महान ? ॥१॥
वह तप बल सारी श्रेष्ठि सन्ताप हारी।
वह जप बल सारी श्रेष्ठि सन्ताप हारी
अहह ! सब हुए हैं आज को हाय ! लोप।
हम पर यह कैसा दैव का तीव्र कोप ? ॥२॥
वह मणि-खणि, नाना रत्न माणिक्य मुक्ता।
वह नव-निध, चाँदी-स्वर्ण सम्पत्ति युक्ता ?
अहह अब, कहाँ हैं आर्य-आनन्द-हेतु ?
अब हम न रहे क्यों सौख्य-संसार-सेतु ? ॥३॥
यह अवनि हमारी थी सभी अन्न पूर्णा।
यह अवनि हमारी थी कभी अन्न पूर्णा ?
यह अवनि हमारी थी प्रभा-ऊष्म पूर्णा।
अहह ! अब वही है आज हा ! भष्म पूर्णा ॥४॥

द्विज सकल अविद्या के उपासी बने हैं।
कपट कलह सारे क्षत्रियों में घने हैं॥
वणिक कृपण हो के हो रहे दास आज।
पतित बन रहा है अन्त्यजों का समाज॥५॥
विविध रुज हमें हैं नित्य सन्ताप देते।
बल सहित हमारे धैर्य को छीन लेते॥
सुलभ न हम को है सच्चिकित्सा विधान।
विवश सब हमारे वैद्य-विद्या निधान॥६॥
निशि दिवस जगी है भूख की तीव्र ज्वाला।
गुण गण जिसने हैं क्रूर हो सोख डाला॥
अब रह न गया है पाप या पुण्य ज्ञान।
उदर भरण ही का है हमें एक ध्यान॥७॥
कृषि क्षति करते हैं नित्य या कष्ट नाना।
घर पर न हमारे नाज है एक दाना॥
सिर पर ऋण का है भार भारी सदैव।
अब फिर दुहिता का व्याह है, दैव दैव!॥८॥

जागहु मात !



(१)

त्यागि नींद अब उठहु मात भारत कित सोये।
काहे अस निरदयी भई किमि सुनत न रोये॥
विलपत तव सुत फिरत करत क्रन्दन अधीर हैं।
पूरि रह्यो है आर्त्तनाद चहुं दिशि गँभीर है॥

(२)

धुनि धुनि सिर कहि मात मात तव सुत अकुलावैं।
ह्वै शोकाकुल हाय ! मात ! मुर्छित ह्वै जावैं॥
थर थर कांपत गात बात कछु समुझि परै ना।
मुख मलीन तन छीन दीन दुख कहत बनै ना॥

(३)

बिखरे केश कुवेष धूरि है अङ्गन छाई।
तन मन धन सुधि खोरि भूमि निज सयन सजाई॥
वारि विहीन मलीन मीन सम व्याकुल भारी।
छटपटात कहि 'मात मात' दुख गिरा उचारी॥

(४)

मणि विहीन ह्वै जात दशा जिमि सर्पराज की।
का, अधीर सुत-दशा, मात ! नहिं लखहु आजसी॥
कहु सुत कस बिन मात धरैं धीरज जग माहीं।
को करिहै तिनको लालन पालन ?—कोउ नाहीं॥

(५)

को निज मधुरी वाणीसो सुत चित्त चुरै है ?
'पुत्र पुत्र' कहि चूमि चूमि मन मुदित करै है॥
को करिहै सनमान मान सब भांति हमारो ?
खान पान असनान ध्यान महँ मात ! विचारो॥

(६)

याहि सबै दुख-अगिन जरावत पुत्रन छाती।
भभकत दहकत ज्वाल बैन ढिग सों कढ़ि आती॥
यदपि करत बहु जतन मात भारत सुत समरथ।
ज्वालि प्रज्ज्वलित-शान्ति हेतु सींचत जल सत्पथ॥

(७)

पै दुर्दैव ! हतास होत सब आस विलावै ।
तदपि यत्न बहु भांति करतहूँ शान्ति न पावै ॥
मात ! उठहु अब वेगि निठुरई त्यागु, दयाकर ।
देखहु भारत दशा दुर्दशा भोग्या दुखकर ॥

(८)

शोक अश्रु को वारि माहिं दुख अगिनि बुझावहु ।
चूमि बहुर मुख चन्द सुतन के हिय हुलसावहु ॥
उठहु मात ! तजि नींद दशा भारत कहँ देखो ।
जहँ सुख शान्ति समाज साज के रह्यो अनेको ॥

(९)

सोइ भारत तव आज मात, है गयो भिखारी ।
पूछत कोउ न बात हाय ! पावत दुख भारी ॥
धन सम्पति सुख साज लूटि दुर्व्यसनन लीन्हो ।
जन समूह सब नाश रोग राकस करि दीन्हो ॥

(१०)

मन है छिन छिन छीन होत परि शोकन पाले ।
तन फांफिरसों सूखि गयो रोगनन हवाले ॥
पेट हेतु हू सूझि परत जहँ कछु न उपाई ।
तहँ व्यापार कला-कौशल का पूछिय भाई ?

(११)

जहँ विद्या विज्ञान धर्म्म को होत ह्रास नित ।
तहँ कस उन्नति आस रहत जहँ जन जर्जर-चित ॥
डूबा आरज मान ध्यान अभिमान शान को ।
हिन्दुस्तान सुथान बन्यो अब हा ! अजान को !

(१२)

जागु जागु प्रिय मात विलंब को समय नाहिं अब।
तव स्वागत के हेतु देख इत होत साज सब॥
जागि सुमति करिदेहु सुतन लग नीति सिखावहु।
करन देश निज प्रेम याहि तिहिं मन्त्र पढ़ावहु॥

(१३)

सबै स्वदेशी वस्तु लेन हित 'एवमस्तु' करि।
परदेशी वस्तुन तमाम नाशन को प्रण धरि॥
देश-दुर्दशा-दलन, देश सेवा महँ करि मन।
शुभ स्वतन्त्रता लाभ हेतु वारैं नित तनधन॥

(१४)

यहि शिक्षा दै सुतन, मात ! निज भगिनि जगावहु।
कलकत्ता कालीमाई कहँ चलहु उठावहु॥
कालगालसों सुतन अबै काली उद्धारहिं।
प्लेग महामारी बसन्त दुर्गति रिपु टारहिं॥

(१५)

वीणापाणी सरस्वती गुणवती भगिनि तव।
काशी आइ जगाइ देहु मा ! तजि विलम्ब सब॥
कृपा तनिक जिन पाइ होत नर बुधि-विद्या घर।
कला कृषी, विज्ञान करैं उन्नत सब सत्वर॥

(१६)

जाइ बम्बई मात ! जगावहु मुम्बा माई।
भरि देवहि घरघर भारत सुख सम्पति लाई॥
महालक्ष्मी मात वनिज व्यापार बढ़ावहिं।
टारहिंवस्तु विदेश ढेर, सुखसाज सजावहिं॥

(१७)

जावहि दुख सब भाग उदय सुख रवि को होयहि ।
होयहि चहुँदिशि नाम धाम आरज मन मोहहि ॥
मोहहि 'वन्देमात' धुनी तव कान घोरतम ।
तम-दुखजाहि विलाय; जागु मा ! लखु अधीर हम ॥

हमारी दुःखमयी दशा ।

प्रिय जिसे अपना तुम मानते
प्रकट जन्म लिया तुमने जहां,
विविध कष्ट सहे जिसके लिए,
सुधि न क्या उसकी अब है ? हरे ! ॥ १ ॥

सुरभि संग लिए अति मोद से
मधुर वेणु बजा वन देश में
विचरते जिन को कहते 'सखा'
अहह ! क्या अब भूलगये उन्हें ? ॥ २ ॥

यह वही व्रज मण्डल है प्रभो !
वह रही जमुना यह हैं वही ।
यह वही सब ग्वालिनि ग्वाल है ।
पर न क्या तुम आज रहे वही ? ॥ ३ ॥

यह दया, वह कोमलता कहां ?
वह सखा-प्रियता, वह बन्धुता,
वह दुखी-दुख कातरता कहां ?
जननि-भक्ति कहां वह ? हे हरे ! ॥ ४ ॥

न सुनते दुख-आरत नाद क्या--
श्रवण ? नेत्र न क्या यह देखते
अति दरिद्र-दशा इस देश की ?
फिर कहें हम क्या ? करुणानिधे ! ॥ ५ ॥

विपय कोप हरे ! वह इन्द्र का !!
न ब्रज मण्डल ही पर आज तो
सकल भारत है यह डूबता--
जल बिन—दुख-सागर में हहा ! ॥ ६ ॥

मरण सा यह "काल" कराल है
महह ! आर्य-कुबेर निरन्न है।
मच रही दशहू दिश "हाय" है
"न मिलता हमको अब अन्न हा !" ॥ ७ ॥

सुरस गोरस थी जिन को सदा
सुलभ थे नित भोजन के लिए
अब वही हम कर्कश अन्न भी
महह ! पा सकते दुख से नहीं ॥ ८ ॥

कर रहे नितही उपवास हैं
बिलखते शिशु-बालक बालिका
अति क्षुधा वश मा स्तन से अहो !
निकलता इक बूँद न क्षीर है ॥ ९ ॥

विविध रोग पुनः दुख दे रहे
ज्वर, तथा क्षय, प्लेग, विसूचिका।
उदर में फिर भूख कराल है
वसन गेह मलीन महान हैं॥ १०॥

कुल वधू अति हीं सुकुमारियां
कृश-शरीर अधीर] अपार हो
पति सुता सुत की लख के दशा
विकल भू पर मूर्छित हो रहीं!॥ ११॥

उदर अग्नि बुझे जिस भांति ही
घृणित निन्दित का न विचार है।
कर पसार "क्षुधा" कह रो रहे
विविध ये नर कातर भाव से ॥ १२॥

मर रहा नर जो अति भूख से
वह न क्या अघ है करता हरे!
न रहता उसको कुछ ज्ञान है
स्वकुल का अथवा निज धर्म्म का॥ १३॥

चुन दिये हम थे कितने गये
विषम भीषण भीत कठोर में।
जल गये--पर "आह" न थी ज़रा
सब सहे पर धर्म्म तजा नहीं॥ १४॥

अब वहीं हम, कातर भूख से
उदर ज्वाल निवारण के लिए
सहज ही तजते निज धर्म्म हैं
अहह! पेट! कराल कठोर तू॥ १५॥

गिरि नदी वन गोचर भूमि की
अननि थी यह शस्यमयी महाँ।
अब वहाँ तृण घास बिना. लखो.
मररहीं मृदु गो गण भूख से ॥ १६ ॥

कृषक के धन प्राण समान जो
पशु-समूह. उन्हें लख व्याकुल
कृषक हैं करुण स्वर रो रहे
न अब प्राप्त उन्हें तृण हो रहा ॥ १७ ॥

भवन में जिसके शिशु रो रहे
विलपते अति भोजन के बिना
तब कहो. उस दीन किसान का
बल कहाँ पशु-रक्षण का रहा ॥ १८ ॥

यदि कहीं पर गो वध हो रहा
हम सभी उसके हित प्राण को
समझ तुच्छ. किया करते रखा
तुरत गौ वध आकर रोकते ॥ १९ ॥

कुटिल क्रूर तथा कपटी महा।
† यवन से जय था रख हो रहा
सब गऊ उस के आनि सामने
रखदिये हमने निज शस्त्र थे ॥ २० ॥

"अनल-आपद्-सागर] बीच में
पड़, महा दुख भारत पायगा ॥

† पृथ्वीराज और शहाबुद्दीनगोरी की लड़ाई।

शत सहस्र युगों तक दासता
सकल भारत भू पर छायेगी" ॥ २१ ॥
यह प्रभो ! हम थे सब, जानते
पर न 'गो वध' था हम से हुआ
हम यहाँ निज गो-गण को लखो
वधिक के कर में अब बेंचते !! ॥ २२ ॥
हम हुए इस भांति निकृष्ट हैं
हमहुए इस भांति कठोर हैं
हम हुए अति भारत-अन्ध हैं
हर लिये गुण सर्वस "भूख" ने !! ॥ २३ ॥
अब अतः करके करुणा प्रभो
स्व-भुवि भारतको रख लो, अहो !
अब न और प्रजेश ! विलम्ब हो
हम स्व पातक का फल पा चुके ॥ २४ ॥
स्वसुर आलय से अति प्रेम है
तज समुद्र न आ सकते यदि
तब मुकुन्द ! दया इतनी करो
हृदय दो धनवान-समाज को ॥ २५ ॥
कुछ यहांपर दानव जाति के
अधम मानव हैं अति हिंसक
स्वजन बाहर कातर रो रहे
पर न वे निज 'फाटक' खोलते ॥ २६ ॥
श्रवण हैं पर ये सुनते नहीं
व्यथित बान्धव भारत-नादको ।

नयन हैं पर ये लखते नहीं
स्वजन के दुख, दारिद, दुर्दशा !! ॥ २७ ॥
मति इन्हें कुछ उत्तम दो तथा
रति इन्हें अति दो परमार्थ में !
यदि कहीं यह लोग कृपा करें
दुख दरिद्र कटें इस देश के ॥ २८ ॥
इस धनी धनवान समाज के
हृदय में करुणा भरदो हरे !
यह हरें दुखदीन मलीन के
क्षुधित पीड़ित निर्धन बन्धु के ॥ २९ ॥
न जिससे हम आतुर भूखसे
यवन हो निज धर्म्म बिगाड़ लें
न अथवा प्रभु ईसु मसीह के
शरण में पड़ दें तज धर्म्म को ॥ ३० ॥
कवच हैं दृढ़, भारत वर्ष का
सरल शान्त किसान-समूह ये
कृषि सुधा मय जीवन प्राण है
कृषक का बल पा हम धन्य हैं ॥ ३१ ॥
यदि किसान हुए बरबाद तो
नृप रईस धनी पल में मिटें
न फिर हों 'सर', रायबहादुर
बन, फिरें चढ़ मोटर, हों कुली ॥ ३२ ॥
कृषक रोदन हैं करते हरे !
जठर ज्वाल कराल कठोर से

उठ धनी इनको धन अन्न दें
कृषक हीन मरुस्थल देश है ॥ ३३ ॥

गो-विलाप ।



यह दैव-कोप मुझसे अब है सहा न जाता ।
जाऊँ कहां, करूं क्या, कह तू मुझे विधाता !
सुत तीस कोटि मेरे विख्यात बुद्धि बल में ।
संसार को उलट दें चाहें तो एक पल में ॥
सुत तीस कोटि मेरे कर साठ कोटि जिनके ।
चाहें तो वज्र लाखों दें तोड़ यथा तिनके ॥
सुत तीस कोटि मेरे पद साठ कोटि जिनके ।
डालें कुचल मही के एकेक देश गिनके ॥
यदि एक साथ जिह्वा हिन्दू सकल हिलावें ।
क्या याल मेदनी की, सुरधाम कांप जावें ॥
इस भांति शक्तिशाली सुत तीस कोटि रहते ।
गो मात कट रही हूं लाखों विपत्ति सहते ॥
ए पुत्र हिन्दवासी मैं अम्ब हूं तुम्हारी ।
आराध्य अन्नपूर्णा अवलम्ब हूं तुम्हारी ॥
दुख से मुझे बचाओ, हिन्दू, यवन, इसाई ।
असहाय मैं शरण में तुम सब के आज आई ॥
अब भी न जो करोगे गो मात की भलाई ।
इससे अधिक न जग में होगी कृतघ्नताई ॥

करुण क्रन्दन ।

प्लेगमें भारतके गरीबों के चित्तकी दशाका दिग्दर्शन।



हे हरि आर्त्तत्राण दुखी मोदद दुख त्राता !
दीन बन्धु भगवान दयासागर सुखदाता ॥
सर्वशक्ति सम्पन्न ! क्षमा-जलनिधि अविनाशी !
शरण आपकी आज हिन्द के सकल निवासी ॥
अन्तर्यामी आप आपसे है क्या कहना ?
होता है पर कठिन नाथ! दुख में चुप रहना ॥
धीरज धरता मन न व्यथित होने पर दुख से।
'नाथ ! मेरे हम' यही निकलता है नित मुखसे ॥
दिन दिन हरि ! आपत्तिरूप भीषण धरती है।
हम दीनों को व्यथित विकल विह्वल करती है ॥
रुदन बिना अब और सहारा पास न कोई ।
बन्धुहीन हम दीन, हमारी आस न कोई ॥
हुआ प्लेग का कोप लगे ज्यों चूहे मरने ।
दुखका आगम देख लगे पुरवासी डरने ॥
क्रम क्रम बढ़ने लगी मौत की संख्या घर घर ।
पुर बाहर जा टिके धनी निज निज बंगलों पर ॥
त्योंही वैभवयुक्त लोग तज निज घर, भागे ।
जा ग्रामों में रहे अभयांचित सुख से पागे ॥
वाहन हय रथ भृत्यु सहित सुख साज सजाये ।
दौरेके हित गये बहुत हाकिम मन भाये ॥

केवल हम [illegible] आप्य को देते अपने ।
रहे [illegible] हुए शान्ति सुख हम को सपने ॥
हुए हाट [illegible] शिथिल, दूकानें सारी--
[illegible] तात ! कष्ट है हमको भारी ॥
मजदूरी [illegible] हमारा और नहीं है ।
[illegible] हाय ! हमारा ठौर नहीं है ॥
मिलना [illegible] ! न हाय ! उधार कहीं है ।
[illegible] हम हुए न कुछ आधार कहीं है ॥
एक नहीं [illegible] उपवास हुए हैं ।
[illegible] उदास हताश हुए हैं ॥ ॥
भूख [illegible] बिलख बालक रोते हैं ।
[illegible] देख, भाग्य धीरज खोते हैं ॥ ६ ॥
लगे हमारे [illegible]-गगन में दुख-घन घिरने ।
[illegible] काल के मुख में गिरने ॥ [illegible]नाई ॥
[illegible] पड़ी हुई है ।
[illegible] पर दिन खड़ी हुई है ॥ [illegible]रे ॥ ४ ॥
[illegible] नड़ने हैं हा हा !
[illegible] देखा होता है [illegible]
[illegible] फिर [illegible]
[illegible] नहि [illegible]



भारत-दुर्भिक्ष ।



निज यथा शक्ति भिक्षा दीजे अब, प्यारे !
मर रहे भूख से नारी नर बेचारे ॥
इस वर्ष पड़ा दुर्भिक्ष हिन्द में भारी ।
मर जातीं तलफ २ बालक नर नारी ॥
उनकी आखें हैं भीतर हाय ! सिधारी ।
हो गई हाड़ सब देह सूख कर सारी ॥
नहिं कान सुनाई देता लाख पुकारे ।
है कण्ठ सूख हा ! गया भूखके मारे ॥
ऐसे दुखियों को दुख से कौन उबारे ?
निज यथा शक्ति भिक्षा दीजे अब प्यारे !
मर रहे भूख से नारी नर बेचारे ॥ १ ॥

कहिं अनावृष्टि, अति वृष्टि कहीं पर भाई ।
है दशा कहीं की हा ! हा ! अति दुखदाई ॥
आषाढ़ मास से गिरा कहीं नहिं पानी ।
ह खेत पड़े बिन बोये, सुनिए दानी ॥
होगये धनी मानी भी हाय ! भिखारी ।
उपवास करें नित श्रेष्ठ कुलों की नारी ॥
बरबाद हो रहे ज़मींदार गण सारे ।
नहिं मिले नाज हा ! खोज २ कर हारे ॥
निज यथा शक्ति भिक्षा अब दीजे प्यारे !
मर रहे भूख से नारी नर बेचारे ॥ २ ॥

कोइ, "भूख २" कह रोते औ चिल्लाते,
कोइ, 'प्राण उड़े जाते है, कह अकुलाते ॥
पत्ते खाकर कोई हैं दिवस बिताते,
कोई २ नर हा ! हा ! घास चबाते ॥
जो कुछ पाते उसको झट मुहँ में डारें,
नाहिं भला बुरा औ भक्ष्याभक्ष्य विचारें ॥
निज यथा शक्ति भिक्षा अब दीजे प्यारे,
मर रहे भूख से नारी नर बेचारे ॥ ३॥

जब देख न सकतीं निज पति का दुख भारी,
निज हत्या कर लेतीं कुलवन्ती नारी ॥
मुट्ठी भर चावल के हित हा ! हा ! भाई,
माता बेचें निज बच्चों को दुखदाई ॥
ऐसी विपत्ति भारत में घर २ छाई,
निज भ्राताओं की लखो भ्रात कठिनाई ॥
बिन आप कौन दे धन अब इन्हें उबारे,
मर रहे भूख से नारी नर बेचारे ॥ ४ ॥



हमारी अस्वस्थता।

हे करुणा वरुणालय ईश्वर ! हे जगदीश विधाता !
हे हे पतित जाति के रक्षक, रोग-शोक-भय-त्राता !
हे दयालु हे भारतबन्धो ! हे सुख सद्गति दाता !
कब तक और सहेगी ऐसे दुख यह भारतमाता ! ॥१॥

शान्ति सौख्य का आकर था यह भारतवर्ष हमारा।
सुरगण को ईर्ष्या होती थी लख कर हर्ष हमारा।
भूमण्डल को चकित किया करता उत्कर्ष हमारा।
पर अब रोते रोते ही कटता प्रति वर्ष हमारा ॥ २ ॥

धर्म्म अर्थ अरु काम मोक्ष का स्वास्थ्य मूल कारण है
स्वास्थ्य बिना जग में लोगों का व्यर्थ प्राण धारण है।
हाय ! स्वास्थ्य खोकर बैठे हैं जब हम भारत वासी।
हो सकते देशोन्नति के हम कैसे, कहो, प्रयासी ! ॥३॥

हीन वीर्य, हत बुद्धि, पुनः छल कपट कलह में पागे।
सदाचार, शुचि, सुमति, शील, सत्कर्म, एकता त्यागे।
हम किस भांति उठा सकते स्वदेश हित के बीड़े हैं
नहीं फूल फल सकते वृक्ष लगे जिनमें कीड़े हैं ॥ ४ ॥

अतः ध्यान दें सर्व प्रथम स्वास्थ्योन्नति में हम भाई !
आयुर्वेद प्रचार करें क्रम क्रम से सश्रम भाई !
कर्माधीन सौख्य हैं, देहाधीन कर्म हैं सारे
कर्म-शक्ति का साधन है निज देशोन्नति ही प्यारे ! ॥५॥

ऋषि प्रणीत वैज्ञानिक विधि से पूर्ण परीक्षित ऐसी
आर्य्य-चिकित्सा है भूतल में और न कोई जैसी।
चीर फाड़ की क्रिया जहां करते वैदेशिक सारे।
करते हैं आरोग्य वहां जड़ियों से वैद्य हमारे ॥ ६ ॥

जिसकी जो है मातृभूमि सुख शान्ति दायिनी प्यारी।
उसको है सब भांति वहीं की औषधियां गुणकारी
शाक, अन्न, जल वायु वहां का सुधा तुल्य है उसको,
स्वास्थ्य विधायिनि रेणु वहां की भी अमूल्य है उसको ॥७॥

अतः अन्यथा करें नाश हम नहीं धर्म धन अपने
शिक्षा देकर सविधि करें तैयार वैद्यगण अपने।
राज वैद्यगण निज निज राजाओं को दें शुभ शिक्षा,
आयुर्वेदोद्धार कार्य की लें वे उत्तम दीक्षा ॥ ८ ॥

भारत के नृपवर्यों का कुछ ध्यान इधर जब होता।
नाच गान या रास रङ्ग का फिर जाता व्यय-सोता
इसी ओर—इस आयुर्वेदोद्धार हेतु यदि भाई!
हित भारत का होता, मिटती रोक-शोक समुदाई ॥९॥

हे भारत के प्रान्त प्रान्त के विज्ञ वैद्यगण प्यारे!
ईश्वर से हम करें विनय, वह हमें दुखों से तारें
करें यत्न हम जी से तो क्या रुज भय नहीं करेंगे?
कहती अहा! प्रतिध्वनि, इसमें संशय नहीं, "करेंगे" ॥१०॥

भारतकी होली ।

अन्न न मिले पेट भर कबहूं, हैं अकाल जहँ बारह मास।
आगी महँगी की लागी अब, चहुंदिसि जहां दुःखकी बास॥
इस प्रकार जब मांगत घर घर, कर धर तूमा झोली है।
ईश ! हाय हम भारतवासी, कहैं कौन मुख "होली है" ॥१॥

उहदेदारों के घोड़े बन, नित हम कोड़े खाते हैं।
ऊँघ जांय तो हाय ! हमारे, सिर तक फोड़े जाते हैं॥
एक नहीं दो नहीं जान, कितनों ही ने तो खोली है।
ऐसे दुख में पड़े पड़े हम, कहैं कौन मुख "होली है" ॥२॥

ओहो ! क्या अब करें, भगें, नित कहां, प्लेग जब हमें सतात।
औरत बच्चे मार कहीं, मारी जर औ बसन्त घहरात॥
अंग-शोक-चिन्ता से दुर्बल, मन्द हो गई बोली है।
अः ! कैसे कह सकें खोलमुख, यह भारत की "होली है" ॥३॥

कटत क्लेश से दिवस हमारे, शान्ति नेकहू नहीं लखात।
खलमल होत आयँ गृह २ अब, भाइन बीच कलह घहरात॥
गति है क्या ? जा अदालतोंमें, खाली करते झोली हैं।
घर घर हिन्दू लरत रुदत सों, रुदन शब्द की होली है ॥४॥

चख होटल में जूठे हम सब, छिप छिप करैं कसाई काम।
छली कुटिल व्यभिचारी होकर अहैं पेट के बने गुलाम॥
जनम ठाढ़ होवत ही कूदें, पढ़ते गिटपिट बोली है।
झख मारैं नौकरी हेत शिर, पीट पीट, बस, होली है ॥५॥

टके एक के लिये विप्र, धोवी हो जायँ जनेव उतार।
ठगते रूप धरे पण्डित के, मूड़ मुड़ाय छोड़ घर द्वार॥
डगर चलत जोरू धर लेते, देते लहँगा चोली है।
ढरत आंख से आँसू सुन, ऐसी गति छांकी होली है॥६॥

तकलीफें हैं खूब भोगते, जिनका हो नहिं सके बखान।
थर थर करें भूख के मारे, कारीगर औ कुली किसान॥
दगा विदेशी चीजों ने दे, मारी हमको गोली है।
धन सब जाय विदेश चला अब कहैं कौन बल होली है॥७॥

नहिं गोरस नाहिं घीव दही नाहिं गेहूं की भी पूछो बात।
परें उपास जरे नित छाती, हमरे भाग न नूनहु भात॥
फसल दुःखसे उपजावें बहु, परें अन्य की झोली है।
भोग लगाओ भाजी की अब, अहो देवगण! होली है॥८॥

बहुत दुःख पाते हम सब हैं, बाल-विवाह तापसे हाय!
मर जातीं सन्तान कभी भी, कभी गर्भ तक भी गिर जाय॥
यदि कोई बच जाय जन्म ले, वह सब दुखकी गोली है।
रकत वीर्य सब पानी होके, बल बुधि जरती होली है॥९॥

लगे रहें हम सेवकाई में, चौबिस घंटे सब कुछ भूल।
वर्णविचार कर्म धर्मादिक, सब जूए में हार समूल॥
शक्ति न कौड़िहु उपजाने की, बिक गई नागर डोली है।
पद रिपुके हो दास बकें नित, फूहड़ कहते होली है॥१०॥

सहत दुःख दिन काटैं तेहि पर हाकिम दौरें दरबार।
हरदम रसद बिगारी लेवें, फोकट देवें गारी मार॥
छमा रूप धर भारतवासी, मुखते बात न भाखी है।
त्राहि! त्राहि! भगवान! दयाकर नतु आरत की होली है॥११॥

विदेशी चीनी त्यागो।

जागो जागो सुत ! विपति पड़ी है भारी।
यह खड़ी पुकारे भारत माता प्यारी ॥
कैसे तुमको अब भी है नींद सुहाती ?
कैसे तुमको भय लाज नहीं कुछ आती ?
कैसे कँप उठती नहीं तुम्हारी छाती ?
कैसे उज्ज्वल तव बुद्धि मन्द हो जाती ?
हो जाते क्यों तुम भ्रष्ट असभ्य भिखारी ?
जागो जागो सुत ! विपति पड़ी है भारी ॥

सब धाम नाम होते हैं नष्ट तुम्हारे।
व्यापार कला कृषि कौशल डूबे सारे ॥
कुल मान जाति भी हुई नष्ट अब हारे।
विद्या बल पौरुष बचा न तुममें प्यारे ॥
लुट गई वस्तु यह भी प्राणों सम प्यारी।
जागो जागो सुत ! बिपति पड़ी है भारी ॥

है बचा धर्म्म ही अपनी सम्पति सारी।
धन जन विद्या बल पौरुष कीर्ति तुम्हारी ॥
दुख नरक यातना से जो तुम्हें छुड़ावे।
दोनों लोकों में काम सदा जो आवे ॥
क्यों वृथा समझते तुम उसको दुखकारी।
जागो जागो सुत ! विपति पड़ी है भारी ॥

है सार जगत में केवल यही लखाता ।
सब दुख दारिद्रता से है तुम्हें छुटाता ॥
जब पिता मित्र औ ज्ञाति बन्धुवर भाई ।
आते फिर भवन चिता पर तुम्हें चढ़ाई ॥
यह तजे न तुमकों तब भी देख दुखारी ।
जागो जागो सुत ! विपति पड़ी है भारी ॥

इसके ही कारण हुई लड़ाई भारी ।
हो गई सती सोलह हज़ार बर नारी ॥
इसके कारण नर तृण सम प्राण तजे है ।
पर धर्म्म जाति का नेक न ध्यान तजे है ॥
अब प्रीति धर्म्म की गई कहां यह न्यारी ।
जागो जागो सुत ! विपति पड़ी है भारी ॥

चीनी जो लेते तुम बज़ार में जाकर ।
जो बिके मिठाई हलवाई के घर पर ॥
चीनी न बनी यह सांटा रस सुन्दर से ।
पर बनी चुकन्दर बीट और गाजर से ॥
जिनकों छूने से तुम्हें नहाना पड़ता ।
उलटा नहिं होकर हाय ! तुम्हें क्यों रुचता ॥
तुम तजो इसे यह है विकार अधकारी ।
जागो जागो सुत ! विपति पड़ी है भारी ॥

इसको ही खाकर हुए क्षीणबल सारे ।
विद्या पौरुष उत्साह घटा सब प्यारे ॥
ब्राह्मण ! तेरे ब्रह्मत्व में लागी आगी ।
क्षत्री ! तुम निर्बल हुए अशक्त विरागी ॥
तुम वैश्य ! हो गये लोभी औ व्यभिचारी ।
सेवकाई शूद्र न करते हुए भिखारी ॥
गुरु ब्राह्मण को भी देते अब ये गारी ।
जागो जागो सुत ! विपति पड़ी है भारी ॥

यह भ्रष्ट विदेशी चीनी तुम झट त्यागो ।
सौ कोस दूर अब इसे देखते भागो ॥
यह बाघ रूप गौका धर कर है आया ।
सब हिन्दवासियों को चाहे अब खाया ॥
खुद समझ दूसरों को भी तुम समझाओ ।
यह पद्य दुबारा गाकर उन्हें सुनाओ ॥
उठ धर्म नीति की रक्षा करो तुम्हारी ।
जागो जागो सुत ! विपति पड़ी है भारी ॥



'देशोद्धार सोपान'

(केसरी के एक लेख का पद्यबद्ध अनुवाद)

प्रश्न—हैं कौन आपके अतिथि बोलिये प्यारे ?
उत्तर—भारत के प्रेमी औ कारीगर सारे।
प्र०—किस भांति देशकी दरिद्रता यह भागे ?
उ०—जब करें स्वदेशी ग्रहण विदेशी त्यागें।
प्र०—है बड़ा लाभ क्या ? तप क्या बड़ा हमारा ?
उ०—देशप्रचार, सेवा स्वदेश शुभ प्यारा।
प्र०—फैली स्वदेश भर में क्या चीज़ दुखारी ?
उ०—निज देशदशामें अज्ञानता हमारी।
प्र०—है क्या विष ? लज्जा कौन बात करनेमें ?
उ०—अन्यावलम्ब, परदेश-वस्तु लेने में।
प्र०—भरपूर ज्ञान अब हमें चाहिए किसका ?
उ०—बनती क्या क्या चीजें स्वदेश में हैं इसका,
औ कौन कौन चीजें हैं बननेवाली।
कैसे हो देशोद्धार देश धन-शाली॥
प्र०—है मोहजाल क्या ? हमें बता दो भाई !
उ०—भड़कीली वस्तु-विदेश ग्रहण दुखदाई।
प्र०—क्या है आलस्य ? हमें उसको है तजना।
उ०—मन और कार्य्य से देशकार्य्य नहिं करना॥
प्र०—क्या सत्य मान है ? कहो हमें है सुनना।
उ०—सब देश भाइयों से स्वदेश हित मिलना॥
प्र०—है खेद हमें किस किस प्रकार की क्षति पर ?

उ०—उन पढ़े लिखे लोगों की उलटी मति पर।
जो डरें स्वदेशी आन्दोलन करने को।
नित देश जाति हित हेतु ध्यान धरने को॥

प्र०—स्थिरता किसमें हो हमें इसे बतलाओ?
उ०—निज देश-प्रेममें, जिससे सब सुख पाओ।
प्र०—है सत्य धैर्य्य क्या कहो? हमें है सुनना।
उ०—परवाह न करके देशोन्नतिका करना।
सङ्कट में घबरा करके कभी न रोना।
उत्साह देशकी प्रीति कभी नहिं खोना॥

प्र०—किस लिए चाहिए हमें स्नानका करना?
उ०—परदेश-माल संसर्ग हेतु ही डरना।
औ पहिले के संसर्ग पाप मोचनको;
कर स्नान शुद्ध करना शरीर औ मनको॥

प्र०—पण्डित है कौन स्वनाम धन्य अति नीके?
उ०—जिसको यथार्थ हो ज्ञान वस्तु-देशी के।
प्र०—क्यों हृदय बीच है ताप हमें दुख कारी?
उ०—लख देशीकारीगरियों का दुख भारी।
प्र०—है दम्भ क्या उसे सर्प तुल्य है तजना?
उ०—केवल करना बकवाद, काम नहिं करना।

प्र०—कह कौन नरक अक्षय भागी होते हैं?
उ०—वे सब स्वदेशद्रोही जो नित सोते हैं।
औ धनरहते भी सुयश कमा नहिं लेते।
देशी धन्धोंको उत्तेजना न देते॥

प्र०—हैं कौन देशके भक्त, बोलिये भाई?

उ०—मन बातचीत औ कामों में सुखदाई।
जिनका देशाभिमान हो, सुनिये प्यारे।
है वही सपूत स्वदेश-भक्त रतनारे॥
प्र०—मीठी बातोंसे कहो हमें क्या मिलता?
उ०—सब लोग स्ववश में आते, होती स्थिरता।
प्र०—हैं मीठी बातें कौन, हमें समझा दो?
उ०—जिसका, सुनिये, परिणाम सदा अच्छा हो।
प्र०—बतलाय मोक्ष किन किन लोगों को मिलता?
उ०—दिखलाते जो सेवा स्वदेश में स्थिरता।
प्र०—मुर्दा समान है कौन पुरुष जीवित हो?
उ०—जो शक्ति मानसिक आर्थिक से भूषित हो,
भोगता स्वार्थ, परमार्थ भूल जाता है।
निज देश धर्म्म का ज्ञान बेंच खाता है॥
प्र०—किसका प्रचार हो वायुवेगसे घर घर?
उ०—उज्वल देशाभिमानही का भारत भर।
प्र०—है कौन पुरुष जागता सदा निद्रित हो?
उ०—जिसके मनमें निज देश-प्रेम जागृत हो।
प्र०—भारत के सच्चे मित्र कौन हैं प्यारे?
उ०—देशी व्यापारी, देशोद्धारक सारे।
कल कौशल कृषि व्यापार बढ़ाने वाले।
विज्ञान कारखाने फैलाने वाले॥
प्र०—है सुख का साधन कहो मुख्य क्या भाई?
उ०—सेवा स्वदेश मन धन से दैन्य मिटाई।
प्र०—है कौन पुरुष आनन्द में सदा रहता?
उ०—निरपेक्ष बुद्धि से देश काम जो करता।

प्र०—आश्चर्य्य कौन सी बातों पर है दुखकर ?
उ०—हो परावलम्ब भिक्षुक होने की मति पर।
प्र०—है देशोन्नति का मार्ग कौन मन भावन ?
उ०—उद्योग और धन्धों का पुनरुज्जीवन।
संस्थापन जनन आदि धन मन से करना।
औ देशोद्धार-उपाय चित्त में धरना॥

प्र०—है खबर आज क्या हमें सुना दो अब ?
उ०—अज्ञान घोर तम बीच पड़े हैं जो सब।
धन धर्म्म-विनाशी आरत भारत वासी।
हैं जाग रहे कुछ कुछ अब त्याग उदासी॥

प्र०—है पुरुष कौन जग बीच जन्म नर पाकर ?
उ०—जो देश-कार्य्य-हित पाय प्रशंसा घर घर।
प्र०—दारिद्र पुरी से सम्पतिपुर को जाने,
के इच्छुक हिन्दनिवासी कौन सयाने ?
उ०—निज देश भाइयों के हित माल स्वदेशी,
जो भक्तिभाव से बना, तजें परदेशी,
कम दाम से सदा सत्य बेंचने वाले।
औ दृढ़ निश्चय से देशी लेनेवाले॥

प्र०—अतिसार हिन्द को पैशाचिक जु लगा है।
उसकी अति उत्तम औषधि कहिये क्या है ?
उ०—केवल एक ही दवाई, भ्रात न बेशी।
देशाभिमान अनुपान संग शुभ देशी;
चीजें प्रचार के दृढ़निश्चय की गुटिका;
का सेवन करना, बदला हो उस क्षतिका।

प्र०—इस समय लोक प्रियता हो क्या करने से?
उ०—निज देश विषय में अनास्था तजने से।
प्र०—है दया नाम किसका? चूको क्यों करने?
उ०—निज देश बान्धवों को भूखे नहिं रहने—
देने की इच्छा, दृश्यरूप है इसका,
कि देशी माल ग्रहण की सुदृढ़ प्रतिज्ञा।
प्र०—है साधु कौन, क्या उनकी परीक्षा नीकी?
उ०—जो करें साधना देश भलाई ही की।
प्र०—अति मूर्ख किसे कहते हैं लोग सयाने?
उ०—निज देश लाभसे निज न लाभ जो जाने।
प्र०—अभिमान हमें हो प्यारे कहिये किसका?
उ०—निज देश, धर्म्म औ देशभाइयों ही का।
प्र०—आनन्द अहे किस बातका हमें भारी?
उ०—इस बातका कि भारत सरकार हमारी।
कहती सहायता देने को हम सबको।
देशी प्रचार की सब बातों में अब तो।



स्वतन्त्रता-प्रति भारत माता।



हे हे प्रजा-प्राण-प्रमोद-दात्रि! स्वतन्त्रते, देवि, गई कहां तू।
हे राज्यपीड़ा-दुख-काल-रात्रि! आई नहीं क्यों अयतों यहां तू १
जीर्णा हुई मैं बल-बुद्धि-हीना, तो भी मुझे हा! करके अधीना।
देती सदाही दुख तू मुझे है, लज्जा न तोभी कह क्या तुझे है २
क्यों है हुई रुष्ट मुझे बतादे, बेटी, सनाथा कर आ पता दे।
मेरी हुई भूल अहो कदापि, बेटी क्षमा तू कर, आ तथापि ३
तेरी व्यथा से नित अश्रु-धारा, माता बहाती यह मैं, अपारा।
तौभी दया देवि तुझे न आई, सीखी कहां हाय! कठोरताई ४
तू क्या गई छोड़ मुझे अनाथा? त्यागा मुझे ज्यों नृपचन्द्र-गुप्त?
सम्बन्ध त्यागा तव हिंद से क्या? ज्योंही हुआ पुत्र 'अशोक' लुप्त ५
भ्रष्टा हुई भूमि सुधर्म भागा, ज्योंही अविद्या तम-मोह जागा।
तू क्या तभी हो विधवा दुखारी, राजा *पृथ्वी के सँग देह जारी ६
या देवि तूने तव हिन्द छोड़ा, सम्बन्ध क्या भारत सँग तोड़ा?
ज्योंही शिवाजी तज नेह नाते, हा! हा! गये छोड़ मुझे रुलाते ७
तूने नहीं जो तव हिंद त्यागा, बेटी, रही जो छिप के कहीं भी।
ले साथ राजा रणजीत† को तू, हा! हा! गई छोड़ मुझे अवश्य ८
बीते युगों, पै न कहीं 'रिफार्म', हूं एक मैं शास्वत रूप-वेषा।
जाना इसी हेतु तुझे, अवश्य, हुई घृणा भारत से अशेषा ९

---

* पृथ्विराज † रणजीतसिंह (पंजाब केशरी)

स्वार्थी हुए सौरा सुनीति त्यागे, स्वाधीनता बेंच हुए अभागे।
दासत्व में होकर के प्रविष्ट, जातीयता-ज्ञान किया विनष्ट १०
ठंढा हुआ खून, रहा न जोश, द्वेषी हुए हैं न हवास होश।
धिक्कार गाली नित मार खाते, तौभी सदाही सिर हैं झुकाते ११
हो दास भारी दुख हैं उठाते, हा! 'नीच काले' सब हैं कहाते।
स्वच्छन्दताका सुख भी न पाते, आजन्म गाली नित मार खाते १२
तौभी परों के मुख को निहारें, हा! भूल के भी न दशा सुधारें।
व्यापार विद्या कृषि को बिसारें, उपाय कोई न स्वयं विचारें १३
विद्या कला कौशलके उपासी, होते नहीं हैं अब हिन्दवासी।
बैठे निठल्ले, सब हो उदासी, पैदा हुए उन्नति-मूल-नासी १४
लेते सदा वस्तु विदेश वारी, भूले स्वदेशी प्रियवस्तु सारी।
है रुष्ट, जाना इस हेतु प्यारी! तूने दिया है यह दुःख भारी १५
जैसे गई तू तज देवि जेष्टा! भग्नी सभी छोड़ मुझे, सिधारीं।
विद्यादि देवी रण-ऐक्य-श्रेष्टा, हा! हा! तभी सँग गईं तुम्हारे१६
ढूँढ़ें तुझे कायर जीव सारे, पाते न पै वे नित मूँड़ मारे।
तेरा कहां जन्म न जानते जो, कैसे कहो वे तव रूप जानें! १७
है जन्म-भूमी शव-शूर-धूर, ले जन्म रोती जहँ तू अधीर।
दे प्राण के दान स्वदेश सेवी, सोते वहां हैं कवि शूर वीर १८
जातीयता ही तव है शरीर, आत्मा सुस्वच्छन्द विचार सार।
आभूषणादी कवि शूर वीर, देवी! सुवक्ता तव वस्त्र भार १९
होती जहां प्रेम, स्वदेश मीड़ा, जाके करे तू तहँ बाल-क्रीड़ा।
होती सदा तू उनपैऽनुरक्त, पाती जहां है हृद-उष्ण-रक्त २०
है उम्र तेरी सुन, काल, प्यारी सम्पत्ति आशा तव देवि, सारी।

जो जानते हैं यह बात सारी, वेही तुझे पा सकते कुमारी! २१
है किन्तु तेरी यह जन्म-भूमि, बेटी इसे जा, न कदापि भूल।
है स्वर्ग से भी यह भूमि प्यारी, संसार-सारा-सुख-शांति-मूल२२
जो पै अहै फूट विरोध भारी, है एकता भारत बीच जो न।
तौ भी ज़रा तू भयभीत हो न, बेटी यहां आ, अब तू यहां आ२३
विद्यादि देवी रण-ऐक्य-श्रेष्ठा, जो संग तेरे सब थीं सिधारीं।
लैसाथ सारी भगिनी तुम्हारी, सानन्द आओ घर हे कुमारी २४
आओ, गई भाग कुरीति सारी, निद्रा मिटी भारत-मोह-कारी।
देखो सभी होकर सावधान, हैं काटते फूट-विरोध-श्वान ॥२५
कांग्रेसनेसकलभारतकोमिलाया जातीय-ज्ञानसबकेमन मेंजगाया।
हैएकतासुख-लतानव-जातकैसी देखीअभीतकनहीतुमदेवजैसी२६

आओ आओ बिलम तजि सभी जोहते राह तेरी,
देखो कैसी जयध्वनि करते आरती हाथ ले के।
आओ, कीजै सुखद तव प्रजा, राज्य भोगो अनन्त,
पीछे प्यारी! अवसर न तुझे और ऐसा मिलेगा ॥२७॥
अहो! आओ प्यारी रुदन इमि माता करति है।
दया कीजै दीजै बल, सुयश--छाती जरति है॥
प्रजा देखै तेरा मुख, विपति भारी सहति है।
"उबारो उद्धारो दुख विपति टारो" रटति है ॥२८॥

आलस को तजिये ।



देशाभिमान के ज्ञान ध्यान से छूटे ।
यह प्रीति, नीति, परतीत, सनातन टूटे ॥
जानें न मर्म अब धर्म कर्म के कोई ।
हो नष्ट भ्रष्ट करते मन भाते सोई ॥
आती न लाज क्या ? सुमति साज सब सजिये ।
भारतवासी ! अब तो आलस को तजिये ॥ १ ॥

बेचें स्वतन्त्रता होकर दास अभागे ।
व्यापार-कला विज्ञान कृषी अब त्यागे ॥
जूते खाकर सेवकाई जिन्हें सुहाई ।
उनकी उन्नति गति मतिकी हाय ! दुहाई ॥
आती न लाज क्या ? सुमति साज सब सजिये ।
भारतवासी ! अब तो आलस को तजिये ॥ २ ॥

फूँकें स्वदेश धन ले विदेश की चीज़ें ।
निज देश-वस्तु लेने में हम हा ! खीझें ॥
होकर परावलम्बी हा ! दिवस बिताते ।
जानें सब तब भी घृणा न हम कुछ लाते ॥
आती न लाज क्या ? सुमति साज सब सजिये ।
भारतवासी ! अब तो आलस को तजिये ॥ ३ ॥

दुर्व्यसन हमारे सुगुण छीन लेते हैं ।
सब भांति विवश कर हमें दुख देते हैं ॥

हा ! किन्तु नींद हम कुम्भकर्ण की सोते।
हो विषय लिप्त तन मन धन निर्भय खोते।
आती न लाज क्या ? सुमति साज सब सजिये।
भारतवासी ! अब तो आलस को तजिये ॥ ४ ॥

तजिये अभिमान स्वदेश को नाहिं,
रहे जब लौं प्रिय प्रान हिये।
न हिये कछु आन विचारिये जू,
डरिये न कछू सुमती सजिये ॥
सजिये सब साज स्वदेश सुधार को,
भारत-मात सदा भजिये।
भजिये निज देश की वस्तु प्रिया,
अविलम्बहि आलस को तजिये ॥ ५ ॥

मेरी-अर्जी।



ज़रा भारती भाइयो ! हो जो मर्ज़ी।
सुनाऊँ तो मैं एक छोटी सी अर्ज़ी ॥
जगत में रहा नाम भारत का भारी।
यही भूमि वीर प्रसू थी हमारी ॥
यही रत्न गर्भा थी विद्या की आकर।
यही सब कला कौशलों का भी थी घर ॥
इसी ने धरम को जगत में जगाया।
है स्वातन्त्र्य औ सभ्यता को बढ़ाया ॥

यही था सभी देश का ज्ञान दाता।
यही एक था वीरता का विधाता॥
वही है हुआ आज देखो तो कैसा।
रही हां न विद्या न बल धर्म्म पैसा॥
रहे तुम जो दानी हुए सो भिखारी।
फिरो दास हो खा रहे मार गारी॥
न तो भी तुम्हें हाय! कुछ लाज आती।
नहीं शोक से हाय! फटती भी छाती॥
कहां आज अर्जुन? कहां द्रोण हा! हा!
कहां भीष्म? सब का हुआ नाम स्वाहा॥
कहां आज मेवार के वीर राना।
कहां हैं शिवाजी धरे वीर बाना?
कहां आज चित्तौर की वीर नारी?
कहां हाय! दुर्गावती है सिधारी?
है छाई लखो प्लेग ज्वर और मारी।
व फैला है भारत में दुर्भिक्षभारी॥
हुआ चाहता हिन्द है खाक हा! हा!
बचाओ इसे यह तो होता है स्वाहा!
कहां आज सोते हो राजे, हमारे।
कहां हो धनी हिन्द माता के प्यारे॥
कहो कैसे सुख की तुम्हें नींद आती।
अगर द्वार बाहर रुलाई सुनाती॥
तुम्हें पेट भरना लगे कैसे प्यारा।
परोसी मरे भूखसे जब तुम्हारा॥

विचारा है तुमने कि "हमतो हैं राजे।
"करें चैन सुख राजसी साज साजे॥
"मरें दूसरे लोग तो हम करें क्या?
जो जलते हैं उन लोगों के संग जरें क्या?
भरा घर में धन है मज़े है उड़ाते।
जहां हम हैं जाते वहीं मान पाते॥"
प, भाई तुम्हारे इसी देश वाले।
कहाते हैं काहिल कुली और काले॥
बताओ कहां तब रही है बड़ाई।
है भारत की निन्दा सभी ओर छाई॥
ग़रीबों के दुख की न परवा है जिसको।
न भाई के संकट प है आह जिसको॥
वह है जानवर पूँछ औ सींघ के बिन।
है दुनिये का बोझा, करैं उससे सब घिन॥
करो चेत भारत व आरत बहुत है।
न देरी किये देश की ख़ैरियत है॥
न बिगड़ा अभी तक है कुछ देखो भाई।
अगर तुम में हो धर्म औ-धीरताई॥
तिजारत की चाहो अगर तुम तरक्की।
कला कृषि की उन्नति भी चाहो जो पक्की॥
व छोड़ा चहो मांगना भीख दर दर।
करो तो सदा वस्तु देशी का आदर॥
यही स्वावलम्बन का है एक द्वारा।
यही सिद्धि का एकही मंत्र प्यारा॥

यही एक तुम से है विनती हमारी।
इसी में है सारी भलाई तुम्हारी॥

उद्बोधन।



वैश्य भाइयो ! वीर पुत्र तुम हो भारत के।
नाशक हो बस एक तुम्हीं इसके आरत के॥
हरने वाले तुम्हीं एक दारिद्र्य देश के।
भरने वाले सौख्य, सम्पदा, धन अशेष के॥
व्यापार तुम्हारा समर है, युद्धस्थल बाज़ार है।
है विकट अस्त्र 'विनिमय' प्रकट, कवच सत्य-व्यवहार है॥१॥

गिरी हुई है दशा देश की अति दुखदाई।
क्षत्रिय भी बन गये दास सो मान यहाँ॥
धर्म्म, जाति-अभिमान, कर्म्म का ध्यान विसारे।
जीवित भी मृत तुल्य देश वासी हैं सारे॥
भय नहीं किसी को आन है, निजता या कुल-देश के।
हो वैश्य भाइयो ! एक अब, वीर तुम्हीं इस देश के॥२॥

आने पर भी विपद धैर्य्य तुम ने नहिं छोड़ा।
रहे धर्म्म में डटे दासपन से मुख मोड़ा॥
तज कुल का व्यवसाय, की न सेवकाई पर की।
सहकर लाखों कष्ट, टेक रक्खी निज घर की॥
व्यापार विदेशी वणिकगण के कर में जाने मर्मी।
ओ वैश्य भाइयो ! इसे तुम, छोड़ दिये होके कर्मी॥३॥

हुआ समय का फेर तुम्हारी मति गति बदली।
हुई कलङ्कित हाय! तुम्हारी जाति-मण्डली॥
अवगुण घुसे हज़ार भवन में भ्रात! तुम्हारे।
भगे शील, औदार्य्य, सत्य-बल, सद्गुण सारे॥
मिलते नहिं तुम में चिन्ह कुछ वैश्य धर्म के आज हैं।
तुम में छल, मद, दुर्वासना, लख कर आती लाज है॥४॥

थे परिश्रमी, बली तुम्हारे पुरखे नामी।
उनकी ही सन्तान-हुए तुम निर्बल कामी॥
थे सहिष्णु, निर्भीक, वैश्य जो गो-द्विज-पालक।
आज वही तुम बने भीरु, कपटी, कुल-घालक॥
जो आंगन सा समझते सारे हिन्दुस्तान को।
दूकान-गमन-हित चाहिये रथ उनकी सन्तान को॥५॥

उठो न देरी करो नींद तज, नयन उघारो।
जो है घर की दशा गिरी तुम उसे सुधारो॥
अकपटता, सत्प्रेम सत्य मारग हैं स्थायी।
गहकर इनको बनो भ्रात! सच्चे व्यवसायी॥
दरिद्रता मिट जायगी, फिर भारत में सुख शान्ति हो।
हम दुःख न ऐसे पायंगे, दूर अकाल अशान्ति हो॥६॥

व्यवसायी के लिए दूर है देश कौनसा?
व्यवसायी के लिए शूर है देश कौनसा?
व्यवसायी के लिए असम्भव हैं क्या बातें?
व्यवसायी के लिए दिवस बन जाती रातें।
व्यवसाय विमल वाणिज्य में सुख सम्पति का द्वार है।
जातीय समर में विश्व के यही विजय आधार है॥७॥

उपदेश।



विद्यार्थियो जो सुख चाहते हो
न व्यर्थ खोओ पल भी तुम्हारा।
डरो न आगे लख विघ्न-बाधा,
कर्तव्य से आनन को न मोड़ो ॥ १ ॥

जहां नहीं साहस धैर्य होता
वहां न जाती फिर सिद्धि देखी।
क्या भीरु को भी जगमें कदापि।
मिली कभी है जय, सोच देखो ? ॥ २ ॥

सत्प्रेम, सद्भाव, नहीं जहां है
अशान्ति का राज्य वहां सदा है।
सद्धर्म, स्वातन्त्र्य सुनीति-निष्ठा
है शान्ति के द्वार प्रशस्त भू में ॥ ३ ॥

है शील ही भूषण मानवों का
देता यही है जग में नरत्व,
विद्या बिना शील, न काम आती
अतः बनो निश्चय शीलवान ॥ ४ ॥

विपत्तियों में,मत धैर्य छोड़ो,
होना नहीं कातर शोक देख
हो सारग्राही मधुमक्षिका से
पिपीलिका से धन कर्म साधो ॥ ५ ॥

प्रलोभनो से परिपूर्ण भू है
न भद्य होना इनके कभी भी
आलस्य हिंसा जल को बिसार
धारो हिये में श्रम स्वावलम्ब ॥ ६ ॥

लड़े जहां सोदर सोदरों से
हुई भलाई उनकी कभी क्या ?
बिसार के बन्धु-विरोध, मित्र;
मिले रहो आपस में सयत्न ॥ ७ ॥

है वीर्य ही जीवन प्राणियों का
है वीर्य से लभ्य पदार्थ चारों
दो वीर्य रक्षा पर नित्य ध्यान
कर्त्तव्य साधो बन कर्मवीर ॥ ८ ॥

आशा तुम्ही हो इस भव्य भूमि की
दायित्व भारी यह है सखे ! बड़ा,
ज्यों मातृ भू के दुख शीघ्र ही मिटे
प्रयत्न त्यों नित्य किया करो सभी ॥ ९ ॥



नम्र निवेदन ।



भावी भारत के सन्तान
दृढ़ प्रतिज्ञ गुण शील निधान
छात्रो हे सुजन शिरोमणि ज्ञानवान जो सारे हो ।
स्वतन्त्रता प्रेमी बल बीर
सत्य न्याय ग्राहक अति धीर
हिन्दू मुसलमान भारत हित रत, जो सकल हमारे हो ॥१॥
उनमें कितने राज कुमार
अथवा कुली कृषक परिवार
या रईस धनियों के लड़के ब्रह्मचर्य व्रत के पालक ।
तज के ऊँच नीच का ज्ञान
द्वेष कपट का कर अवसान
एक भाव रख कर आपस में बनो सभी देशोद्धारक ॥२॥
हिन्दी भाषा का उद्धार
कर, उसका सब करो प्रचार
जिस से सरल नागरी लिपि का घर २ होय बोलबाला ।
सुन्दर सुखद सनातन धर्म
निश्च २ वर्णाश्रम कर्म
पालो; तुम सब पाखण्डों का करदो झटपट मुँह काला ॥३॥
जिनमें नहीं जाति अभिमान
वे नर हैं बस मृतक समान
अतः बनो तुम देश तथा निज जाति धर्म के प्रेमी बीर ।

विद्या पढ़ो बनो मतिमान
अर्जन करलो सच्चा ज्ञान
न्यायी कार्य दक्ष हो करके बनो सुशील साधु वर धीर ॥४॥

हाय ! दास बनते जो लोग
मिलता उन्हें न सुख सम्भोग
घृणित श्वानसम घृणित दृष्टि से सब देखे जाते हैं।
नत मस्तक भय कम्पित गात
सहते हैं स्वामी की बात
मौन भाव से खड़े २ कुछ नहीं बोलने पाते हैं ॥५॥

जोड़े हाथ खड़े दिन रात
भूखे प्यासे निर्बल गात
सदा निरुत्तर हो स्वामी की आज्ञापालन हित जाते।
धर्म कर्म आचार विचार
देना पड़ता सभी बिसार
पूजा पाठ ध्यान जप वे नहिं सपने में भी कर पाते ॥६॥

जात पांत सब करते नष्ट
हो कर भ्रष्ट उठाते कष्ट
नाना भांति पाप कर्मों के करने में रत रहते हैं।
ऊपर भरे शुष्क अभिमान
चक्रवर्ति नृप राज समान
किन्तु कांच की भट्टी के सम भीतर तन मन दहते हैं ॥७॥

माता पिता कहां घर रहा
औरत बच्चे भाई कहां
कहां अकेले घन जंगल में फिरते दुख से दिन जाते।

बुरी कहीं की है जल-वायु
जिससे पल २ घटती आयु
रोगाक्रान्त पुनः हो करके हीन वीर्य हो पछताते ॥ ८ ॥

स्वतन्त्रता तज बनो न दास
प्यारे उस में है अति त्रास
नहीं देखते भाई! क्या तुम अपनी हीन अवस्था हाय।
क्या थे हम सब हैं क्या आज
सोच न यह क्या आती लाज
कहां गये वे सकल हमारे अत्युन्नत स्वतन्त्र व्यवसाय ॥ ९ ॥

कृषि कौशल कल कला अपार
कारीगरी विविध व्यापार
तजकर, हम सब हुए आज इस भांति हीन से भी हैं हीन।
ब्रह्मचर्य का पूर्ण अभाव
विषमय बाल्य-विवाह प्रभाव
करते जाते दिन २ हमको निर्बल भीरु कापुरुष क्षीण ॥१०॥

कर्णार्जुन, कृप, द्रोण समान
हम थे वीर रथी बलवान
सुर गण भी लज्जित होते थे भारतीयः बल वीर्य समक्ष।
यह न निरा पौराणिक गल्प
मिथ्या है इसमें नहिं अल्प
"राममूर्ति" है इसका विमल प्रमाण आधुनिक अति प्रत्यक्ष ॥११॥

उच्च नीच सब बन्धु समान
रखकर देश भक्ति का ध्यान
देश दशा अनुसार करो तुम हे छात्रो! स्वतन्त्र व्यवसाय।

ब्रह्मचर्य्य है जीवन सार
ब्रह्मचर्य्य व्रत को उर धार
बाल्य विवाह रोकने का तुम करो सशक्ति सदैव उपाय ॥१२॥

तज आपस का वैर विकार
करो एकता प्रेम प्रचार
कृषि वाणिज्य कला कौशल की उन्नति मन देकर करिये।
जाकर अमरीका जापान
सीखो नव विद्या-विज्ञान
नूतन शक्ति विभूषित होकर मातृ भूमि का दुख हरिये १३॥

हो चाहे तुम सभ्य वकील
या सम्पादक, सुकवि, सुशील
अथवा व्यापारी, किसान या उच्च पदस्थ-कर्मचारी।
रखना उर में इसका ध्यान
आत्मोन्नति का मंत्र महान
गला काटना दीन दुखी का है सब पापों से भारी ॥ १४ ॥

दीन दुखी पर अत्याचार
कर, भर लेना निज भण्डार
वर्तमान में मनुष्यत्व का लोग समझते इसे विकास।
पर इसके सम अघ न महान
इसे त्यागना सर्प समान
कष्टोपार्जित दीन-ग्रास हरने से उत्तम है उपवास ॥ १५ ॥



पृथ्विराज के उत्साह-वाक्य ।

———— रोला ————

सावधान सब होहि, जाहु क्षत्रीगन मेरो ।
यवन करन भय चहत, पुण्य भारत मँह डेरो ॥
* * * *
हम क्षत्रिन के रहत, दुर्दशा गो ब्राह्मन कहँ ।
होयहिं सो धिक यल, विक्रम क्षत्री जीवन महँ ॥
चलहु करहु निज धर्म, अटल निर्भय ह्वै भाई ॥
जमि रण भूमि चटान, तुल्य लरि शत्रु भगाई ॥
चरखिन देहु चढ़ाय तोप, लखि मुरचे सारे ।
गरजि सिंह सम लेहु, काढ़ि असि निजकर प्यारे
सुमरि देव-कुल, चूमि, सुता सुत आनन अन्तिम ।
'वन्दे भारत मात' शब्द, करि घोर घोर तम ॥
मारू बाजे बजन देहु, सब मारु मारु रट ।
धरि २ फूंकहु नरसिंघन, भेरी हूं चटपट ॥
झटपट करि रन साज, वीर झपटहु शत्रुन पहँ ।
जिमि झपटत है लवाबाज, पक्षी झुण्डन महँ ॥
* * * *
एहि विधि देहु विदारि, मारि पापिन कहँ भाई ।
धर्म युद्ध महँ अवशि, होहिं रघुनाथ सहाई ॥
दांत बतीसो झारि मारि, दोउ कान मरोरहु ।
शत्रु रक्त महँ अजय, खड्ग-भारत की बोरहु ॥
विजय वैजयन्ती, भारतकी चहुँ फहरावहु ।
जय २ धुनि सों महावीर, आकाश कँपावहु ॥
* * * *

पांव न पीछे धरहु, करहु घमसान खेत महँ।
प्रान देशहित देहु, लेहु यश विमल जाहु जहँ॥
भारत भूमि पवित्र, मनोहर सुषमा शाली।
जल थल विपुल सुहात, नित्य नूतन हरियाली॥
निर्मल जल नर्मदा गङ्ग सुतरङ्ग सङ्ग लै।
धोवत कलिमल कलुप नशावत भरत अंग के॥
छवि अपार सुखसार, धार यमुना जहँ सोहत।
प्रकृति देविको सुघर, रूप जहँ मुनि मन मोहत॥
जहँ नित बादल अदल, बदल कल छल दिखरावत
दल थल लै धावत कहुँ, बरसावत तरसावत॥
जहँ उत्तर दिशि अचल, हिमाचल रत्न विभूषित।
समाधिस्थ है करत राज, प्रकृती सों पूरित॥
शिखर समाज अनेक, एक सों इक अति सुन्दर।
कृष्ण वर्ण तरु हरित खेत जल झील मनोहर॥

* * * *

जहँ तहँ फूलत फलत अहै नित नूतन तरुवर।
कहुँ कदम्ब कचनार, अनारन कहुँ पीपर वर॥
कतहुँ अहै झूमत रसाल, कहुँ ताल मनोहर।
कतहुँ पलास विशाल, साल श्रीफल कहुँ सेमर॥
कतहुँ बेर कहुँ चार, नीम अमली कहुँ सुन्दर।
कहुँ सरसोवां बेल, जाम गूलर कहुँ कटहर॥
कहुँ अकोल अनमोल, सराई सिरिस सुहावन।
अहै निम्बु नागौन, सन्तरा कहुँ मनभावन॥
कहुँ गुलाब सौरभ, सञ्चारत विमलवायु महँ।
कतहुँ माधवी फूल, शूल हिय काटत नर कहँ॥

कहु चमकत चम्पा, चपलासी कतहुँ चमेली।
लपटि मालती कतहुँ, करत तरुसों अटखेली॥
सरिता सर भरपूर, नीर सों शोभा खानी।
देतदान जल नरन, सदा लखि सकुचहिंदानी
तिन महँ फूले कमल, कमोदिनि जन मन मोहत
हंस बतक बक चक्र, बाक प्रमुदित जहँ डोलत॥
कुञ्ज कुञ्ज कूजत केकी, कोयल कहुँ कुहकत।
ठौर ठौर गुञ्जार भौंर को, मुनि मन मोहत॥
रतन खान को थान, धान धन सों परिपूरित।
ज्ञान कला विज्ञान, गान-विद्या गुण भूषित॥
शूर समर कवि धीर, वीर दानी मानी नर।
धर्म वीर सभ्यता, शिष्ट को हिन्द इष्ट घर॥
सब सुख-सम्पति-साज, राज नृपराज जगत को।
ताकी ममता छोड़ि सकै, अस अधम कहहु को॥
जब लौं आरज राज माहिं, आरज कुल बासा।
जब लौं आरज नाम धाम, जन-तन महँ स्वासा॥
तब लौं वीर कृपान, म्यान महँ थान न पावै।
शत्रु प्रानको ध्यान, ज्ञान सब ह्वान गिरावै॥
शत्रु एकहुं बचन नाहिं, बनहूँ महँ पावै।
बन बन खोजि विदारि, मारि म्यानहि लय जावै॥
'अस विधि साहस धैर्य, देइ" नृप निज वीरन कहँ।
धर्माधर्म सिखाइ, सुशिच्छा देइ सबन कहँ॥
चल्यो खेत नृप सुमरि, देवि-भारत शुभरासी।
मनहुँ वीर रस प्रकट भयो, कुल यवन विनाशी॥



कहां गये ?

(१)

अपने धनुष याण से सुरपति सैन्य लजाने वाले।
भू मण्डल में आर्य-विजय दुंदुभी यजाने वाले॥
धर्म कर्म स्वातन्त्र शान्ति के साज सजाने वाले।
कहां गये वे वीर हमारे 'आर्य' कहाने वाले!

(२)

निर्बल, भीरु, कापुरुष, कायर हुए आज हम ऐसे।
नहीं स्वप्न में भी देखा था आर्य भूमि ने जैसे॥
निष्प्रभ हो, निद्रा, आलस में माते, हम दुख पाते।
जन्म काल से रोगी होकर निष्फल जन्म विताते॥

(३)

सौ में से निन्यानवे हैं ऐसे हम लोगों में।
फँसे हुए हैं जो दो से भी अधिक दुखद रोगों में॥
सिर दुखने लगजाता है यदि करते हम कुछ श्रम हैं।
एक मील भी चलते हाय! फूलने लगता दम है॥

(४)

यह शारीरिक दशा, मानसिक दशा विषम है इससे।
हुए निरक्षर भट्टाचार्य आर्य ऋषि सुतगण जिससे॥
चारों वेद मुखाग्र रहा करता था जिनको आहा!
वे द्विज पुस्तक विना न अब तर्पण कर सकते हा! हा!

छत्रपति शिवाजी का मनो महत्व।

राजभोग के साथ योग का देखो अद्भुत योग,
प्रभुता में संयम का है यह सुर-दुर्लभ-सम्भोग॥
मनोदमन का है अति निर्मल उदाहरण यह चित्र,
सुन इसका वृत्तान्त न होंगे किसके श्रवण पवित्र?॥१॥

स्वाभिमान-स्वातन्त्र्य-सत्य के मूर्तिमन्त अवतार।
लिया शिवाजी ने करमें जय सत्शासन का भार॥
उस अवसर पर "श्री आबाजी सोनदेव सरदार"
गये सदल कल्याण-प्रान्त पर करने को अधिकार॥२॥

सत्य-धर्म के अनुयायी हों जो नृपवर नीतिज्ञ।
विजय-विभूषित हों कैसे नहिं उनकी सेना विज्ञ॥
अनायास ही आबाजी ने जीत लिया कल्याण,
सूबेदार वहां का आया वश में तज अभिमान॥३॥

शीलवान स्वामी के सेवक हो कर भी गुणधाम।
कभी लोभवश नर कर जाते अतिशय निन्दित काम॥
पद-उन्नति की मृगतृष्णा में पड़ "आबाजी" आज।
क्या कर डाला तुमने, तुम पर हँसता विज्ञ-समाज॥४॥

सुबेदार को जीते जी कर हा! हा!! मृतक समान।
उसके कुल की इस कन्या को छीन बने बलवान!
होंगे इसकी सुन्दरता से भूप शिवाजी मुग्ध।
इस विचार से उन्हें दे रहे यह विष-मिश्रित-दुग्ध॥५॥

अस्तु, दूत ले गुण-गण-धन्या इस कन्या को साथ
पहुँचे नृप सम्मुख फिर बोले सविधि झुकाकर माथ ॥
"रूप-रश्मि लावण्य-लता यह बाला परम मनोज्ञ
महाराज के अन्त:पुर में है रखने के योग्य" ॥ ६ ॥

कौशल पूरित भावाजी की विनती यों कर व्यक्त।
हुए दूत भय-विकल देख नृप को निस्तब्ध विरक्त ॥
अश्रुप्लावित नेत्र स्तब्ध हो कन्या चित्र समान।
खड़ी हुई थी मन में कहते "लाज रखो भगवान्!" ॥७॥

सुन कर दूत-वचन भूपतिवर शील-शिष्टता-सद्म।
देख तथा कन्या का निष्प्रभ हिम-ग्रसित मुख-पद्म ॥
बोले वचन वसन्तकाल के कोकिल के अनुरूप
ऐसे भी सेवक हैं तेरे देख, शिवाजी भूप! ॥ ८ ॥

करके फिर सम्बोधन नृपवर अपने ही को आप
बोले वचन सुधा-सिञ्चित यों करते पश्चाताप ॥
"यदि मेरी माता होती यों रूपवती विख्यात,
अहा! न होता क्या ऐसे ही सुन्दर मैं भी जात! ॥६॥

"धर्म-पुत्र है प्रजा नृपतिका" कहती है यों नीति।
धिक है प्रजा-पुञ्ज पर जो नृप करता व्यर्थ अनीति,
मेरी प्रजा-सुता यह इसका मैं हूँ सदा सहाय,
देखो, इस पर होने पावे लेश भी न अन्याय ॥१०॥

इस साध्वी को लेकर जाओ इसी समय कल्याण
सौंपो इसे पिता को उसके, मांग क्षमाका दान।
विनय-युक्त तुम उससे बोलो यह मेरा सन्देश
"होने देगा कहीं शिवाजी अत्याचार न लेश" ॥११॥

खड्ग-याण जिस शत्रु हृदय को सकते कभी न जीत।
पल में उसको वश में करते ऐसे चरित पुनीत॥
ऐसे उपकारों को कैसे रिपु सकता है भूल।
रिपु हो कर भी मित्र बनेगा वह तज वैर समूल॥१२॥

सच्चरित्रता देख नृपति की, उनके भृत्य समूह।
भेदन करने लगे भीति से व्यभिचारों के व्यूह॥
हुआ भूप के बृहत् राष्ट्र में यह सिद्धान्त प्रधानः—
"गो-द्विज अबला रक्षा करना देकर भी निज प्राण"॥१३॥

मर्त्यधाम को स्वर्ग बनादें पल में प्रभुतावान,
या चाहें तो उसको कर दें विष-मय नर्क-निदान।
इस चरित्र से मित्र! यही उठते हैं मनमें भाव:-
बड़े जनों के कार्य्यों का पड़ता है बड़ा प्रभाव॥१४॥

गो-ब्राह्मण-अबला प्रतिपालक धन्य शिवाजी वीर!
हरते हैं तुम जैसे सुत ही मातृभूमि की पीर॥
अतुलनीय है मित्र! शिवाजी का यह मनोमहत्व
मनुष्यत्व में देखो यह अमरत्व-पूर्ण देवत्व॥१५॥

कठिन समय में रक्खी तुमने हिन्दूगण की लाज
यवन-दर्प को दल भारत में स्थापित किया स्वराज।
महाराष्ट्र-केशरी शिवाजी महाराज गुणखान,
रिपु भी करते अहा! तुम्हारे सच्चरित्र का गान॥१६॥

मन को करना दमन सर्वथा दुष्कर है यह कार्य्य
है क्या वस्तु असम्भव जिसको कर नहिं सकते आर्य्य?
भूप शिवाजी का आर्योचित मनोदमन-उत्कर्ष,
अहा! प्रजा प्रियता का है यह अत्युत्तम आदर्श॥१७॥

यही देश है जहां एक दिन थे धर्मी नरपाल,
आज यहीं के भूपालों का देख रहे हो हाल।
पूज्य-पूर्वजों के चरितों को देखें हम न विसार,
तो क्या "हिन्दू-जाति हीन है" कहता यों संसार? ॥१८

छत्रपति महाराज

श्री शिवाजी के उत्साह वाक्य।

उठो उठो ए वीर-शिरोमणि-गण। सब प्यारे!
उज्ज्वल क्षत्री वीर वंश अयतंश दुलारे!
उठो हिन्द के प्राण? मान गौरव, उजियारे!
उठो उठो ए धर्म सनातन के रखवारे!
अन्यायी शठ छली अधर्मी नर कुल घालक!
इन से बचो उठो गो तिय बालक प्रति पालक!
उठो साधु गुरु दीन दुखी बलहीन सहायक!
भारत वीर प्रसू माता के सुत सब लायक!
उठो न और विलम्ब किये है हिन्द भलाई।
रक्खो इसकी बची खुची अब लाज बड़ाई॥

बीत गये वे दिवस मौज जब रहे उड़ाते।
सुख से सोते हुए, मोह आलस से माते॥
घर में था तब धान भरा सम्पति धन नाना।

पर अब तो हा ! रहा नाज भी एक न दाना ॥
कृषि कौशल वाणिज्य सभी में आगी लागी ।
धर्म कर्म सब डूब गया महँगी है जागी ॥
देश दुर्दशा देख हाय ! फट जाती छाती ।
तब अश्रु की धार दृगों में है बह आती ॥
देखो देखो पड़ी सिसकती भारत माता ।
तन की सुधि बुधि नहीं, स्वास है रुकरुक जाता ॥
रोने को चाहती हाय पर रो नहीं पाती ।
हृदय वेदना हृदय बीच ही दब दब जाती ॥
रक्त मयी है पीठ फूट की लागी गांसी ।
गले लगी विश्वास घात ईर्षा की फांसी ॥
छल अधर्म अतिसार, लगी दारिद की खांसी ।
ऊपर ज्वर है चढ़ा मोह का सत्यानाशी ॥
ऐसी दुखिया दीन मातकी दशा निहारो ।
इसकी पूर्वावस्था की सब बात विचारो ॥

नहीं रहे अब यहां भीम अभिमन्यु वीरगण ।
अर्जुन रहे न द्रोण रहे नहिं भीष्म विलक्षण ॥
नहिंदधीचि,शिवि नहीं, नहीं हा ! रामकृष्ण अब ।
पृथ्वीराज प्रताप आदि भी गये आज सब ॥
मातृ भक्त अब बचा कौन जो विपद भगावे ?
भारत माता आज शरण में किसकी जावे ?
नहीं तुम्हारे बिना वीरगण इसका त्राता ।
अब तो तुमहीं बचे, हिन्द के आश्रय दाता ॥
सम्मुख लड़के मरो पीठ नहिं कभी दिखाओ ।
मिला आज है समय मातृ ऋण शीघ्र चुकाओ ॥

खा खा जिसका अन्न, साग, घृत, दुग्ध, मलाई।
छोटे से हो बड़े, पिण्ड पाला है भाई?
नित प्रति सेवन कर जिसका जल वायु मनोहर।
रहे स्वस्थ चित तुम सब रोगों से बच २ कर॥
खा कर जिसका नमक देह को सुदृढ़ बनाया।
उसे दुखी लख क्या न तुम्हारा जी मुरझाया॥
उठो दिखाओ वीर आज निज नमक हलाली।
चलो बहाओ शत्रु रक्त की नदी पनाली॥
नहीं रहा अब समय और रोने का हा! हा!
शिर पर नाचे यवन हिन्द होता है स्वाहा!
उठो कमर कस शीघ्र देर मत ज़रा लगाओ।
करके सब रण साज, आज जग सुयश कमाओ
देखो देखो यवन सैन्य आया यह आगे।
महामत्त भरपूर गर्व से रण रस पागे॥
थर थर कांपे धरा देख इनकी अधर्म रति।
दशों दिशा हैं त्रस्त, रुक गई चपल वायु गति॥
कहो वीर सब एक तान हो करके निर्भय।
"जय जय दुर्गे दुष्ट निकन्दनि! जय भारत जय"
मारू बाजे बजें घोर धौंसा धमकारो।
भेरी तुरही शंख फूंकि रिपु हृदय विदारो॥
रणसिंहा के घोर नाद से गगन कँपाओ।
भारत मा का सुयश-गान कर मान बढ़ाओ॥
चढ़ा चढ़ा कर तोप चरखियों में अब झट पट।
आग लगा दो सभी बत्तियों में अब चटपट॥
ले ले कर करवाल करों में धाओ वीरो।

यवन सैन्य को मारकूट कर फाड़ो चीरो॥
दुष्ट, विधर्म्मी, नीच, म्लेच्छ, हिंसक ये सारे।
पाप वृत्ति में लिप्त कपट-रण चित्त में धारे॥
नहीं हिन्द में कभी हाय! ये थे आ सकते।
नहीं स्वप्न में भी इसका दर्शन पा सकते॥
पर जिस दिन से छोड़ एकता भारतवासी।
हुए मोह छल फूट कपट के इष्ट उपासी॥
घर घर भेद विचार होगया सुमति भगाई।
मेल मित्रता तोड़ लड़े भाई से भाई॥
अवसर पाकर इसे चोर सम यवन घुस पड़े।
इधर उधर से फौज जोड़ कर वीर बन खड़े॥
उसी दिवस से विमल आर्य्य गौरव रवि सुन्दर!
डूब गया दासत्व उदधि के जल से प्रियवर!
चिर बान्धन में पड़े आर्य्यगण तब से भारी॥
छोड़ सनातन धर्म हो गये अन्ध भिखारी॥
अन्य देश के लिए न हमको लोभ ज़रा है।
क्या स्वदेश में प्रचुर सौख्य साधन न भरा है॥

है स्वदेश यह पुण्य भूमि हम सब की जननी।
सजला, सुफला देव-दुर्लभा दारिद हरनी॥
स्वर्ग लोक में भी न कहीं पर इसका सानी।
चलती इसकी लोक लोक में सुयश कहानी॥
विविध कला विज्ञान सभ्यता का है यह घर।
रत्न धान धन कन्द मूल फल का है आकर॥
सब देशों का ताज राज यह भारत प्यारा।
हमें इसे प्रभु ने दे सौंपा इसका भारा॥

इसकी रक्षा हेतु दिया है अतुल बाहु बल।
इसके शासन हेतु दिया है बुद्धि सुनिर्म्मल॥

है इच्छा यदि वीर! भोगने की घर के सुख।
घर में रहकर, तो न कभी मोड़ो रण से मुख॥
पुण्य भूमि भारत से यवनों को गिन गिन कर।
मार भगाओ शीघ्र, उठो, दौड़ो ले धनु सर॥
महाराष्ट्र वर वंश जगत में जबतक आता।
तब तक नहीं कदापि अधीना भारतमाता॥
वीर वंश में जन्म लाभ कर शीश झुकाना।
छिः छिः उससे भला मार कर ही मर जाना॥
शूर सिंह का काम शत्रु वध करना द्रुततर।
हो नहिं यह, तो मधुर मृत्यु नद रक्त बहाकर॥

नहीं तुम्हें क्या ज्ञात दुर्दशा सोमनाथ की।
धूर उड़ गई जहां हाय! शिव लिङ्ग नाथ की॥
कञ्चन माणिक रत्न लूट मन माने भागे।
जिन्हें स्वप्न में भी न कभी देखा था आगे॥
मथुरा पुरी पुनीत इन्हों ने लूटी हा! हा!
किया घोर उत्पात धर्म धन करके स्वाहा॥
हैं अन्यायी म्लेच्छ प्रजा पीड़क ये सारे।
जात पांत का ज्ञान नहीं इनमें कुछ प्यारे॥
मांसाहारी दयाहीन लम्पट व्यभिचारी।
हठी विधर्मी नीच अहङ्कारी ये भारी॥

पुण्य भूमि यदि चली हाथ में इनके जावै।
दया धर्म स्वातन्त्र्य कला कल सभी भगावै॥

सुख सम्पति का चिन्ह कहीं ना दिखलावेगा।
हाय ! हाय ! का रुदन देश भर छा जावेगा॥
अत्याचार कराल होंय नित हृदय विदारी।
सहें कौन विधि प्रान उन्हें हा ! हा त्रिपुरारी ?
यां, वां, रोती नित्य करेंगी गऊ बिचारी।
यवन बनाये जांय हाय ! द्विज देव अचारी॥
घुस घुस जावें यवन हिन्दुओं के हा ! घर घर।
पकड़ बांध लेवेंगे उनको मार पीटकर॥
सती पतिव्रता वीर बालिकाओं को धर धर।
नष्ट भ्रष्ट कर देवेंगे हा ! बलात्कार कर॥
यही देखने अर्थ अगर तुमको जीना है।
धर्म त्यागकर अगर अमृत तुमको पीना है॥
तो कह दो यह साफ, फेंक हांथों से असि अब।
कि क्षत्रिय के विमल वीर्य-सम्भूत न हम सब॥
नहिं तो धाओ वीर ! करो घमसान खेत में।
विजयी हो या करो विसर्जन प्राणखेत में॥
अगर न बांधो कमर न साहस दिखलाओगे।
कष्ट सिन्धु में डूब थाह कुछ नहिं पावोगे॥
धर्म कर्म करि नाश दास हो पछताओगे।
कभी हिन्द को हाय ! न अपना कह पाओगे॥
यवन पादुका त्रास सहोगे गौरव खो के।
विश्व विदित इस आर्य वंश के बालक होके॥
इससे होके सावधान मत हिम्मत हारो।
"जै जै भारत मात जयति जय हिन्द" पुकारो॥
वीरो दौड़ो करो आज निर्मूल यवन सब।

रिपु शोणित से आर्द्र करो तुम भारत को अब॥
जबतक तन में प्राण वायु हो वीर ! तुम्हारे।
तबतक विमुख न कभी समर से होना प्यारे॥
मारो अथवा मरो अन्यथा पग न हटाओ।
क्षात्र धर्म करि वीर हर्षयुत सुरपुर जाओ॥
क्षण भङ्गुर यह तुच्छ देह इसका न ठिकाना।
आज न तो कल प्रात इसे है निश्चय जाना॥
महा पुण्य है अगर स्वदेशोद्धार हेतु यह।
खण्ड २ हो गिरे उड़े यश सौरभ मह मह॥
जहां धर्म बस वहीं वीर होता निश्चय जय।
यही भरोसा रखो शत्रु कुल का होगा क्षय॥
मरो देश के लिए वार कर तन मन सर्वस।
करो अमरता लाभ जगत में फैले शुभ यश॥ १० ॥

नव्वाब सिराजुद्दौला की पदच्युति की मन्त्रणा

रात्रिका द्वितीय प्रहर है। घोर अन्धकार छाया हुआ है। आकाश में काले काले बादल मँड़रा रहे हैं। कभी २ बिजली चमक उठती हैं। प्रकृति नीरव निस्तब्ध है। सारी मुर्शिदाबाद नगरी जनयातायात शून्य स्पन्दन रहित हो रही है। ऐसे "तिमिर अनन्यकाय शून्य धरातल" समय में सुप्रसिद्ध जगत सेठके प्रासादमें सेनापति मीरजाफ़र, जगत सेठ अमीचंद,

---

† बङ्ग कविगुरु नवीन चन्द्रसेनकृत "प्लासीरयुद्ध" से अनुवादित।

मन्त्री राय दुर्लभ, महाराज राजवल्लभ और राजा कृष्णचंद्र तथा रानी भवानी नव्वाब शिराजुद्दौला के विरुद्ध मन्त्रणा कर रहे हैं। महाराज कृष्णचन्द्र को सम्बोधन करके मन्त्री राय दुर्लभ अपनी सम्मति प्रकट करता है:—

कर कर अनेकों चिन्तनाएं स्थिर किया मैंने यही।
मुझसे कभी इस कर्म का होगा अहो! साधन नहीं॥
आजन्म जिसके अन्न से वर्द्धित हुई यह देह है।
मुझपर विमल विश्वास पूरित अटल जिसका स्नेह है॥
तज धर्म, घोर कृतघ्नता-असि प्रकट धारण की किया।
उस बङ्ग भूप विपक्ष में क्योंकर करेगा यह हिया॥
जिस वृक्ष की छाया तले हूँ प्राण शीतल कर रहा
क्योंकर उसी को मूल से मैं मूढ़ काटूंगा अहा!
जिस गायका शुचि दुग्ध पीकर मुग्ध करता प्राण मैं।
अहि सम उसेही किस हृदय से फिर करूं विपदानमें॥
है घोर पाप कृतघ्नता! मुझ से न सो होगी अहो!
इस तुच्छ मेरे प्रश्न का उत्तर तुम्हीं मुझ से कहो॥
देता सदा जो हाथ है आहार निज मुख में घना।
है कौन ऐसा मूर्ख उसको चाहता जो काटना॥
आहा! कृतघ्न हृदय जगत में घोर नर्क समान है।
इस निन्द्य गुप्त कुमन्त्रणा में अहित पाप महान है॥
सामान्य उपकारी पुरुष का यदि अहित जावे किया।
होता कलङ्कित पाप से तो भी, विचारो तो हिया॥
है अन्नदाता एक तो विश्वास भाजन फिर महा।
उसका करूं अपकार तो क्या राजमन्त्री मैं रहा॥
है राजविद्रोहिता-फिर परिणाम भी निश्चित नहीं।

हो, कौन जाने, पापका फल, हित न हो अनहित कहीं!
हत भाग्य इस नव्वाव को च्युत राजपद से कर अहो।
होगी सुखप्रद कौन सी अभि सन्धि-साधित फिर कहो॥
जो हाथ में नृप दण्ड ले अपना जहां लेगा उसे।
देगा वहीं यमदण्ड फिरतो कौन रोकेगा उसे?
यदि दुष्ट नादिरशाह सा कोई पुरुष निर्दय महा।
कर नष्ट दिल्ली का विभव, ले सैन्य आवेगा यहां॥
रक्षा कहां तब फिर हमारे प्राण धन जन मानकी।
बल बांध रण में जायगा रख कौन बाजू प्राणकी॥
सुख शान्ति के बदले मिले दासत्व शृङ्खल मात्रही।
सर्वस्व खोकर प्राप्त होगा अन्त भिक्षा पात्र ही॥
मैं सहज ही दुर्बल पुनः चिरकाल पर-आधीन हूं।
निज देश रक्षा हेतु अब मैं शक्ति-साहस-हीन हूं॥
शुचि बङ्ग को है शौर्य वीर्य विहीन कर डाला महा।
निज बाहु में-निज हृदय में-यदि बङ्ग शासन शक्ति है॥
पीड़ित प्रजाओं के अपरिमित दुःख नाशन शक्ति है॥
तो दमनकर नव्वाब का रणसाज द्वारा नहिं; अहो।
तुमने शरण ली है वृथा क्यों कपट कौशल की, कहो॥
यदि बङ्ग शासन हित न अपनी शक्ति पर विश्वास है।
नव्वाब के आधीन में तब रहो, नहिं अति त्रास है॥
धर राजपद पर मन्त्रिपद पर है विराजित नीति से।
दें धन्यवाद अदृष्ट को इस हेतु समुचित रीति से॥
मैं मानताहूं यह, न इसके कथन में कुछ लाज है।
निष्ठुर तथा पामर महा दुर्दान्त भूप सिराज है॥
हैं किन्तु क्या नहिं पालते जन विपिन के शार्दूल को।

क्या पालते नहिं काल सम विषधर विकट विष मूलको॥
निज बुद्धि कौशल से हरणाकर क्रूरता शठता तथा ?
फिर भूल है भारी हमारी क्या न करना यह कथा।
हम सब विचारेंगे हृदय में यदि ज़रा नृप नीति को॥
शुचि धर्म नीति सथैव पालक पुण्यमय की रीति को।
तो सकल दुर्दमनीय ये प्रवृत्ति असि की धारसी।
होने लगेगी ज्ञात अति कोमल कुसुम के हारसी॥
शुचि स्निग्ध सौरभ रूपमें फिर दुःख शान्ति विधानहो।
इस बङ्गदेश समस्त में यह बङ्ग स्वर्ग समान हो॥
अतएव पाप कुमन्त्रणा में पांव मैं क्योंकर धरूं।
कलुषित वृथा को पाप से मैं स्वीय आत्मा को करूं॥
पड़ मोह छल में मत्त होऊं क्यों दुराशा में, कहो।
हित में कहीं विपरीति हो पीछे न जनूं मैं अहो॥

उद्गार।



चार दिनों का है यह जीवन सो भी भार हुआ।
यह सुख-प्रद संसार हमें अब हा निःसार हुआ॥
जाते जहां वहीं दुख आते पाते हम पीड़ा।
हा! हा! अपने हाल सुनाते लगती है व्रीड़ा॥
आत्मग्लानि, शोक, भय, चिन्ता, रोग लगे पीछे।
घर में बन में निर्दय निन्दक लोग लगे पीछे॥
किससे अपनी दुख की गाथा ए मन! हम गावें।

किस उपाय से इन दुःखों से छुटकारा पावें ॥
भय्या मुँह मत खोलो जी, भय्या मुँह मत खोलो जी।
मन की बातें मन में रक्खो कुछ मत बोलो जी ॥
कौन सुनेगा दुःख तुम्हारा ए दुखिया भाई !
दुःख सुनाकर किसने दुख से कहो मुक्ति पाई ?
जग में सहिष्णुताही औषधि है सारे दुख की।
दुख की पीड़ा सहते जाओ आशा रख सुख की ॥
सुख की आशा में ही सुख है सुख के लिए न रोना।
निश्चित है इस जग में सुख के पीछे दुख का होना ॥
सुख किसको है यहां, विलोको जिधर उधर दुख है।
शोकित सब का मन है, सबका अति मलीन मुख है ॥
शोकित जन हर सकता कैसे दुख पर के मन का ?
देख दुःख परका दुख बढ़ता है उसके तन का ॥
ध्यान हृदय में रख ईश्वर का करो कार्य्य अपना।
दुख में मत घबराओ, सुख को समझो बस सपना ॥
रहो कर्म-पथ में दृढ़ हो के धर्म न निज छोड़ो।
पुरुषारथ दिखलाने में तुम कभी न मुख मोड़ो ॥
सहिष्णुता के शुचि प्रभाव से दिन ऐसा आवेगा।
ईश कृपा से दुख का बन्धन आप टूट जावेगा ॥



हिन्दू-विश्व-विद्यालय ।

विदित था संसार में कैसा हमारा नाम !
शान्ति सुख से पूर्ण थे कैसे हमारे धाम !
मर्त्य थे हम तदपि था अमरत्व हमको लभ्य,
विश्व में सर्व-प्रथम थे एक हम ही सभ्य ॥ १ ॥
किन्तु अब क्या हो गया है यह हमारा हाल,
हो रही है दुर्दशा कैसी विषम विकराल !!
शान्ति, सुख, स्वातन्त्र्य अपने हैं कहां वे आज,
क्यों गिरी हम पर अचानक यह विपद की गाज ॥ २ ॥
आज भारत म नहीं है लेश भी सुख-भोग
व्याप्त है सर्वत्र भय, दुर्भिक्ष, चिन्ता, रोग
रुदन सुन पड़ता दिवानिशि "हाय हा हा हाय"
"प्राण धारण कठिन है, अब हम हुए निरुपाय" ॥ ३ ॥
क्यों सदा हम भोगते है इस तरह के ताप !
शाप क्यों ऐसा मिला है, क्या किया था पाप !

* * * *

प्राणी सकल निज दुःख सुख के हेतु होते आप
विद्या-जनित अपमान के हैं कुफल ये सन्ताप ॥ ४ ॥
एक विद्या के विना हम होरहे हैं दीन,
एक विद्या के विना हम हो रहे हैं हीन,
एक विद्या के विना हम हो रहे हैं क्षीण
एक विद्या बिना हम हो रहे तेरह तीन ! ॥ ५ ॥

जो अविद्या के न हम इस भाँति बनते दास
तो हमारा इस तरह होता न सत्यानाश॥
पा गये जो देश विद्या का पवित्र-प्रकाश
बन गये हैं वे न क्या स्वातन्त्र्य-सौख्यावाश ? ॥ ६॥

कुछ दिनों के पूर्व थे क्या क्षुद्र इंग्लिस्थान,
फ्रांस, जर्मन और अमरीका तथा जापान
आज विद्या-विभव से बन गये मालामाल
शक्ति-शाली, विश्व-वंदित हो रहे इस काल ॥

भ्रात ! हैं यद्यपि नहीं हम अन्ध और असंख्य
फिर हमें क्यों हा ! न होते पूर्व-गौरव लभ्य ?
हो जहां पर विषम तम का भीति-कारक वास
चक्षु रहते भी वहां दिखता न लेश प्रकाश ॥ ८ ॥

बस, अविद्या छा रही है देश में चहुँ ओर
फूट, ईर्ष्या, छल, कलह का बढ़ रहा है ज़ोर ॥
प्रेम दम्पति में नहीं, है भाइयों में रार
फिर कहो जातीयता लेगी कहां अवतार ? ॥६॥

"दो सभी सन्तान को अपनी सुशिक्षा-दान
उन्हें सिखलाओ सुविद्या सह विविध विज्ञान"
भाइयो ! उद्धार की है राह बस, यह एक
चलो चारो वर्ण इस पर त्याग के सब टेक ॥१०॥

मोह तजकर भ्रात ! विद्या-सुधा कर लो पान
फिर बनेगा आप ही जापान, हिन्दुस्थान
प्रकट होंगे कपिल, गौतम, भीष्म, अर्जुन, कर्ण
ख्यात होंगे आर्य्य-कुल के विदित चारो वर्ण ॥११॥

गठित "हिन्दू-विश्व-विद्यालय" हुआ है आज।
अमर कर उसको रखो जो कुछ बची है लाज ॥
अपव्यय जो वित्त पा कर, कर रहे हैं नित्य।
वे यहांपर दान दे हो जांय अब कृतकृत्य ॥ १२ ॥

हैं अभी भी भरत-भू में दान-वीर अनेक।
वित्त में बढ़कर विलोको एक से हैं एक ॥
एक की है बात क्या? चाहें अगर वे भ्रात!
"विश्व-विद्यालय" यहां खुल जांय अपने सात ॥१३॥

जातीय विद्यालय।

हे मन्दभाग्य नर भारतवर्ष वासी!
हे भ्रष्ट-ज्ञान, गत गौरव, क्लेशराशी!
आलस्य क्रोधरत, तेज प्रताप नाशी।
क्यों हो कहो इस प्रकार बने उदासी?॥१॥

क्यों आत्म गौरव सभी तजके, अभागे!
जातीय ज्ञान कर नष्ट सुधर्म्म त्यागे॥
क्यों लोभ-फूट-मद-मत्सर-मोह पागे?
निर्लज्ज नीच कहला कर भी न जागे? ॥ २ ॥

चीनी विदेशाज तुम्हें यह क्यों सुहाती ?
क्यों है विदेश वर वस्तु तुम्हें लुभाती ?
होते चले तुम गरीब, न दृष्टि आती।
जाता चला धन स्वधर्म, जरै न छाती ॥ ३ ॥

बोलो कहां वह पुरातन कीर्ति-साज।
आती कला छवि न हा ! वह दृष्टि आज।
विज्ञान-कौशल तुम्हें तज आज भागे।
विद्या पराक्रम नहीं तुममें, अभागे ! ॥ ४ ॥

शुष्काभिमान बल से मदमस्त होके,
दारिद्र-प्लेग-जर अर्जर ग्रस्त होके,
हा ! हा ! स्वदेश-कुल-उन्नति शस्त्र होके,
निर्लज्ज, जी तुम रहे दुख ग्रस्त होके ! ॥ ५ ॥

विज्ञान कौशल जिन्हें तुमने सिखाया।
उत्कर्ष का पथ जिन्हें तुमने दिखाया॥
वे ही कला कल-तुम्हें सिखला रहे हैं।
हा ! हिन्द के गुरु वही कहला रहे हैं ॥ ६ ॥

श्री जैमिनी, कपिल, गौतम, श्री कणाद।
क्या कीर्ति हाय ! इनकी तुम को न याद ?
वाल्मीकि शङ्कर, पतञ्जलि, वेद व्यास।
विख्याति हा ! अब हुई सब की विनाश ॥ ७ ॥

दण्डी, मुरारि, मनु, सुश्रुत, कालिदास।
श्री भीष्म * भास्कर † प्रताप रहा न पास ॥

* भीष्म पितामह † भास्कराचार्य (सूर्यसिद्धान्त के रचयिता)

हो मोह-ग्रस्त सबका करके विनाश।
हा ! देखलो तुम बने अब मूढ़ दास ॥ ८ ॥
हा ! है कहां भरत‡-कीर्ति-कलाप आज ?
व्यापार, नीति, कृषि-कार्य, कला-समाज,
छूटा परन्तु अति मिष्ठ विदेश-साज।
छिः सीखते तुम वहीं, लगती न लाज ! ॥ ९ ॥
हे भ्रात ! शीघ्र परदेशज-वस्तु छोड़ो।
छोड़ो तुरन्त उनसे अब प्रेम तोड़ो ॥
तोड़ो विलम्ब विन बन्धन को न जोड़ो।
जोड़ो कभी न, उनसे मुख शीघ्र मोड़ो ॥१०॥
त्यागो विदेश अनुराग बनो विरागी।
आत्मावलम्ब-रत क्यों न बनो अभागी ?
धारो उपाय हिय देश-सुधार-काज।
जागो तुरन्त तज आलस के समाज ॥११॥
जागो तुरन्त अब भ्रात ! करो न लाज।
देखो अभी तक अहो बिगड़ा न काज ॥
आरम्भ कार्य कर शीघ्र रचो समाज।
हो उच्च शीर्ष फिर भारत राज-राज ॥ १२ ॥
विज्ञान-कौशल कला फिरसे बढ़ाओ।
विद्या पढ़ो, कल अनेक नई बनाओ ॥
संगीत-काव्य-कविता-तरु भी लगाओ।
सानन्द भ्रात ! कृषि-कौशल भी दिखाओ ॥ १३ ॥

‡ भरतमुनि (आदि संगीताचार्य)

देखो रहोगे न कभी भिखारी।
हों कामनायें परिपूर्ण सारी॥
जातीय-विद्यालय की तयारी।
जो पै करोगे तुम भ्रात! जारी॥ १४॥

निद्रा तजो अब विलम्ब न भ्रात कीजे।
कीजे न द्वेष मद मत्सर त्याग दीजे॥
दीजे तुरन्त अब कान सुकीर्ति लीजे।
लीजे विचार विनती यदि चित्त रीझे॥१५॥

स्वदेशानुराग।

तजि कपट कलह छल भारतवासी-भाई!
सोचहु सब मिलि निज भाषा देश-भलाई॥
सुनिए हिन्दू और मुसलमान हूं सारे।
तुम उभय हिंद के उद्धारक हो प्यारे॥
माता हमरी यहि भारत भूमिहिं जानो।
यह जगन्नाथ जगदीशहिं पितु करि माना॥
भाइन इहि नाते से हम तुम सब प्यारे।
तौहूं काहे सोचत निज निज को न्यारे॥
निज माता जिमि है जग में सबहीं प्यारी;
तिहि सों स्वदेश भाषा-जननी नहिं न्यारी॥
बाँधि जाहु एकता सूत्र माहिं सब जाती।

तजि राग रोष द्वेषादिक को सब भांती॥
करि प्यार अबै निज देश, सुयश जग लीजै
निज देश हेतु धन जीवन अर्पण कीजै॥
देशी कृषि कारीगरी शिल्प विस्तारो
निज देश-वस्तु को आदर उर में धारो॥
घर घर विद्या की जोति समुज्वल बारो
उर उज्वल हो, कोउ कहै न तुमको कारो॥
बिन एक राष्ट्र भाषा के, सुनलो भाई!
हो सकै नहीं कछु कबहूं देश भलाई॥
है विदित लोक महँ भारतेन्दु की बानी
निज भाषा-ज्ञान बिना न मिटै भ्रम ग्लानी॥
हिन्दी भाषा है हिन्द देश की भाषा
याकी उन्नित है देशोन्नति की आशा॥
करि उन्नति हिन्दी भाषा की तुम प्यारे!
फैलाओ नागरि लिपि स्वदेश में सारे॥
निज मातृ भूमि की करै न सेवा जो जन
जानो प्यारे, उसका निष्फल है जीवन॥
वह नर है साँचो पशु समान जग माहीं
जाको स्वदेश का है घमंड कछु नाहीं॥



राष्ट्र भाषा ।



वर वचन बिना है कार्य होता न कोई ।
वर वचन बिना है आर्य होता न कोई ॥
वचन रहित पाता देश है क्लेश भारी ।
धन धन अब हिन्दी राष्ट्र भाषा हमारी ॥ १ ॥

वर वचन बिना है शान्ति पाता न कोई ।
वर वचन बिना है कान्ति पाता न कोई ॥
वर वचन अहो ! है क्रान्ति विभ्रान्ति हारी ।
धन धन अब हिन्दी राष्ट्र भाषा हमारी ॥ २ ॥

अनुपम कृति रासो चन्द का कीर्ति केतु ।
समर-कुशल आर्यों का महाहर्ष हेतु ॥
घर घर अब तो है पा रहा मान भारी ।
धन धन अब हिन्दी राष्ट्र भाषा हमारी ॥ ३ ॥

अमृत मधुर युक्ता भक्ति का दिव्य द्वारा ।
सुललित पद पूर्णा "सूर" की काव्य-धारा ॥
घर घर बहती है पाप सन्ताप हारी ।
धन धन अब हिन्दी राष्ट्र भाषा हमारी ॥ ४ ॥

सरल सहज, प्यारी, रूप श्रीशक्ति धारी ।
शुचि सरस सुगम्या श्रेष्ट सर्वोपकारी ॥
हर कर इस भू की तू व्यथा भीति सारी,
धन धन अब हिन्दी राष्ट्र भाषा हमारी ॥ ५ ॥

ममर कवि-गुसाईं की कथा, शान्ति-सदा ।
निलेँ रस-सुधा के भक्ति का पुण्य पद्म ॥
मधल भवन पूजा पा रही सौख्यकारी ।
धन धन अब हिन्दी राष्ट्र भाषा हमारी ॥

मातृ-भाषा हिन्दी ।

मिश्र २ भाषा नद लेकर हिन्दी रूप महा धारा ।
बहती हुई सरस कर देवे जीवन्मृत भारत सारा ॥
पा नव जीवन उर्वरता मय कर्म-भूमि यह फिर होवे ।
शुचि साहित्य रूप कृषि, अवनति आर्ति दीनता को खोवे ॥
हो उन्नत साहित्य मिले, निज गत-गौरव फिर से आकर ।
भारत अपना दुख बिसरावे पुनः पूर्व गुरुता पाकर ॥
क्योंकि एक दिन यही देश था भू-मण्डल भरका सिरताज ।
हा ! अभाग्य-वश पतित हुआहै वही काल के क्रम से आज ॥
कैसा था यह देश हमारा विद्यामय सब कला प्रवीण ।
किन्तु समय ने सार हीन कर इसे किया बल बुद्धि विहीन ॥
वह उन्नत साहित्य, हमारा वह संस्कृत भाषा विख्यात ।
लुप्तप्राय हो रहा हमारे भाग्य दोष से अब तो भ्रात !
बोल नहीं सकते अब कोई भाषा मिल कर हिन्दू लोग ।
सात समुद्र पार की भाषा हम करते घर में उपयोग ॥
भाषा ! विपयक घोर दीनता आर्य-भूमि में छाई आज ।
हाय ! राष्ट्र-रसना विहीन हो- गये हमारे भाई ..

भाषा बिना महत्व प्राप्त कर सकती कभी न कोई जाति।
देशोन्नति का मूल प्रौढ़ साहित्य सदा होता सब भांति॥
अब है समय, मोह निद्रा हम तजकर अपना करें सुधार।
अपनी माता मातृभूमि को करें विपद से हम उद्धार॥
माता के उपकार स्नेह शुचि आत्म त्याग हैं अपरम्पार।
उसके ऋण से कौन, कहो, हे भाई! पा सकता उद्धार॥
उसी भांति है मातृभूमि की महिमा अतुल असीम अनूप।
स्वर्गधाम से भी बढ़कर है जिसका शान्ति सौख्यमयरूप॥

दोहा।

माता है निस्वार्थ का, मूर्ति मन्त अवतार।
कृतघ्नता है घोर अति, देना उसे बिसार॥

रोला।

माता के सम देव जगत में और न कोई।
मातृ-भूमि सम सुखद जगत में ठौर न कोई॥
मातृ-भूमि हैं प्राण, प्राण हैं माता प्यारी।
प्राण-हीन हम हुए जहाँ ये गई बिसारी॥
हर्षित हो दश मास गर्भ में हमको धारे।
त्यागे भोजन शयन जिन्हों ने निज सुख सारे॥
जिन से कथन मई हुई मिट्टी की काया.
है कृतघ्न जो भूल जाय उस मा की माया॥
अन्न वायु जल दुग्ध मुग्ध मन जिसके करते।
रोग शोक सन्ताप जहां के रजकण हरते॥

है जिसका शुचि नाम जाति की विभव-भूमिका।
पशु है वह जिस को न ध्यान उस मातृ-भूमिका॥
जन्मभूमि से भिन्न नहीं होसकती माता।
शब्द अर्थ के तुल्य परस्पर का है नाता॥
पूजो यदि तुम एक, हुई दोनों की पूजा।
जननी से न स्वदेश कभी हो सकता दूजा॥
माता का अति दिव्य दान 'भाषा' है भाई।
जिसके बल से मिली हमें जग में प्रभुताई॥
'भाषा' का सम्मान, मान है माता ही का।
भाषा का अपमान कुटिलता का है टीका॥
सब प्राणी में श्रेष्ठ जेष्ठ सुतवर विज्ञानी।
भुक्ति मुक्ति के पात्र सृष्टि के नायक मानी॥
बने हुए हैं बन्धु आज जो हम मद माते।
भाषा बिना कदापि कहो क्या यह पद पाते?
हैं कार्यों के मूल हृदय के भाव हमारे।
भाव प्रकाशाधीन कर्म्म फल होते सारे॥
भाव-प्रकाशन-द्वार जगत में भाषा ही है।
महिमा अपरम्पार जगत में भाषा की है॥
भाषा के आधीन हमारे सर्व कार्य हैं।
बिना सुभाषा नित्य हुआ करते अकार्य हैं॥
असि से भी अत्यधिक सुभाषा का प्रभाव है।
किस पदार्थ का कहो सुवाणी का अभाव है॥
साहित्यों की जगत बीच जननी है भाषा।
है उन्नत-साहित्य देश-उन्नति की आशा॥

भाषा बिना महत्व प्राप्त कर सकती कभी न कोई जाति।
देशोन्नति का मूल प्रौढ़ साहित्य सदा होता सब भांति॥
अब है समय, मोह निद्रा हम तजकर अपना करें सुधार।
अपनी माता मातृभूमि को करें विपद से हम उद्धार॥
माता के उपकार स्नेह शुचि आत्म त्याग हैं अपरम्पार।
उसके ऋण से कौन, कहो, हे भाई! पा सकता उद्धार॥
उसी भांति है मातृभूमि की महिमा अतुल असीम अनूप।
स्वर्गधाम से भी बढ़कर है जिसका शान्ति सौख्यमयरूप॥

दोहा।

माता है निस्वार्थ का, मूर्ति मन्त अवतार।
कृतघ्नता है घोर अति, देना उसे बिसार॥

रोला।

माता के सम देव जगत में और न कोई।
मातृ-भूमि सम सुखद जगत में ठौर न कोई॥
मातृ-भूमि हैं माया, माया हैं माता प्यारी।
माया-हीन हम हुए जहाँ ये गई बिसारी॥
हर्षित हो दश मास गर्भ में हमको धारे।
त्यागे भोजन शयन जिन्हों ने निज सुख सारे॥
जिन से कश्चन मई हुई मिट्टी की काया,
है कृतघ्न जो भूल जाय उस मा की माया॥
अन्न वायु जल दुग्ध मुग्ध मन जिसके करते।
रोग शोक सन्ताप जहां के रजकण हरते॥

है जिसका शुचि नाम जाति की विभव-भूमिका।
पशु है वह जिस को न ध्यान उस मातृ-भूमिका॥
जन्मभूमि से भिन्न नहीं होसकती माता।
शब्द अर्थ के तुल्य परस्पर का है नाता॥
पूजो यदि तुम एक, हुई दोनों की पूजा।
जननी से न स्वदेश कभी हो सकता दूजा॥
माता का अति दिव्य दान 'भाषा' है भाई।
जिसके बल से मिली हमें जग में प्रभुताई॥
'भाषा' का सम्मान, मान है माता ही का।
भाषा का अपमान कुटिलता का है टीका॥
सब प्राणी में श्रेष्ट जेष्ट सुतवर विज्ञानी।
भुक्ति मुक्ति के पात्र सृष्टि के नायक मानी॥
बने हुए हैं बन्धु आज जो हम मद माते।
भाषा बिना कदापि कहो क्या यह पद पाते?
हैं कार्यों के मूल हृदय के भाव हमारे।
भाव प्रकाशाधीन कर्म्म फल होते सारे॥
भाव-प्रकाशन-द्वार जगत में भाषा ही है।
महिमा अपरम्पार जगत में भाषा की है॥
भाषा के आधीन हमारे सर्व कार्य हैं।
बिना सुभाषा नित्य हुआ करते अकार्य हैं॥
असि से भी अत्यधिक सुभाषा का प्रभाव है।
किस पदार्थ का कहो सुवाणी का अभाव है॥
साहित्यों की जगत बीच जननी है भाषा।
है उन्नत-साहित्य देश-उन्नति की आशा॥

है साहित्य प्रधान शक्ति मानव उन्नति की।
है यह दुर्लभ खान जाति के सुख सम्पति की॥
दर्पण है साहित्य देश के विद्या, बल का
रीति, नीति, विज्ञान, ज्ञान, कृषि, कल, कौशल का॥
अचल मानसिक शक्ति-रूप साहित्य नित्य है।
जिससे होता दृष्ट पुरातन काल-कृत्य है॥
धर्म, कर्म, आचार, बुद्धि, बल, विभव, बड़ाई।
है उन्नत साहित्य, कोष इन सबका, भाई!
वेश, भाव, स्वातन्त्र्य, साधुता, उच्च व्यवस्था।
उन्नति-पतन-विधान, दुर्दशा, दीन-अवस्था॥
प्रेम, प्रीति, विद्वेष, नीति-कौशल नृप-समता।
प्रकटाता साहित्य विविध देशों की क्षमता॥
विविध कार्य जो हुए सहस्रों वर्ष पूर्व थे।
जिनके नायक-निकर सभ्यता में अपूर्व थे।
जिनके विमल चरित्र-चित्र-समुदय विचित्र हैं।
इस सब का साहित्य अकेला "मानचित्र" है॥

अतएव हे प्रिय बन्धुगण! अब ध्यान इसपर दीजिए।
सब एकमत हो "एक भाषा हिन्द भर में कीजिए॥
साहित्य के प्रत्यङ्ग की कर" पुष्टि-साधन प्रेम से"।
संसार यात्रा पूर्ण अपनी कीजिए अति क्षेम से॥

व्यापक भाषा है न यहां हिन्दी भाषा सी,
सरस सुबोध सुपाठ्य सरल शुचि सद्गुणराशी॥
अल्प कष्ट से साध्य अल्प समयागम युक्ता।
मुक्ता सम निभ्रान्त नागरी लिपि संयुक्ता॥

अब तजकर बैर विरोध सब हिन्दी को अपनाइए।
कर इसको भाषा राष्ट्रकी सिद्धि सकल नित पाइए॥

हिन्दी का साहित्य समुन्नत सब प्रकारहो।
उन्नत भाव विचार युक्त गत सब विकारहो॥
रीति नीति विज्ञान ज्ञान उपदेश-सार हो।
राष्ट्र अभ्युदय मूल-मन्त्र शिक्षा प्रसारहो॥

हिन्दी का हिन्दुस्थान में घर घर पुण्य प्रचार हो।
इस आर्य्यावर्त पुनीत का शुभमय जय जय कारहो॥

बङ्ग-भाषाके प्रति हिन्दी।



तेरी उन्नति देख, हृदय में हर्षित होते अहा! अपार।
बहिन बङ्ग भाषे! देती हूं तुम को मैं आशिष हज़ार॥
ऋद्धि सिद्धि-संयुक्त वृद्धि यह अति अनुपम तेरी अवलोक।
उठते हैं जो भाव हृदय में उसे न मैं सकती हूं रोक॥ १॥

पुत्रवती तू धन्य, धन्य है मातृभक्त तेरी सन्तान!
करती है अंगरेज़ जाति भी गर्व त्याग जिनके गुणगान॥
जिनके आविष्कारों को लख विस्मित होता है संसार।
भू मण्डल भर के सुधियों के जो हैं अति अमूल्य शृङ्गार॥२॥

ईश्वर चन्द्र, विदित बङ्किम बाबू, प्रसिद्ध मधुसूदन दत्त ।
हेमचन्द्र कवि नवीन चन्द्र मधुमय काव्यामृत पान प्रमत्त ॥
शिशिर कुमार, रमेशचन्द्र, श्री राधाकान्त देव धीमान ।
वसुधा में चिरकाल करेंगे गौरव तुझको बहिन ! प्रदान ॥ ३ ॥

पूज्य सुरेन्द्र, ब्रजेन्द्र, शारदा, विपिन, सतीश चन्द्र गुणखान ।
आशुतोष, जगदीश चन्द्र, गुरुदास, प्रफुल्ल चन्द्र धीमान ॥
सुकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर वर कवि कल कण्ठ महा विद्वान् ।
इन सुधियों का तुझ को ही क्या है भारत भर को अभिमान ॥ ४ ॥

बहिन ! ज्ञात है तुझको बिना राष्ट्र भाषा के कोई जाति ।
कर न सकी अभ्युदय कभी निज पाकर भी सुयोग सब भाँति ॥
धावो विरहित रण-नायक गया यदि करने जावे संग्राम ।
बहिन ! सोच तू तब उनकी सेना का क्या होगा परिणाम ॥ ५ ॥

भाई भाई भेद न कुछ इन भारत के सन्तानों में ।
भाव प्रकट कर सकता किन्तु न एक अन्य के कानों में ॥
कह तू बहिन ! इस दशा में हो जातीयता कहां से प्राप्त ?
एक भाव हो भारत भर के सन्तानों में कैसे व्याप्त ? ॥ ६ ॥

बहु भाषा-भाषी होने से प्रान्त २ के अधिवासी ।
एक देश वासी होकर भी हैं जैसे विदेश वासी ॥
कहीं परस्पर मिलते हैं जब कभी सकल भारत के लोग ।
बिना राष्ट्र-भाषा परदेशी भाषा का करते उपयोग ॥ ७ ॥

यह भाषा वैषम्य बड़ी बाधा है आर्य-अभ्युदय में ।
नहीं एकता आ सकती है हम में इसके ही भय में ॥

इस बाधा की जड़ काटें, इस भय को हम कर देवें दूर ।
एक राष्ट्र भाषा स्थापन कर देशोन्नति साधें भरपूर ॥ ८ ॥

अतः देश उन्नति हित आवश्यक है एक राष्ट्र भाषा ।
विना राष्ट्र भाषा के पूर्ण न हो सकती है निज आशा ॥
बिना राष्ट्र भाषा स्थापनके जाति देश हैं मूक समान ।
एक राष्ट्र भाषा देती है देश जाति गौरव का ज्ञान ॥ ९ ॥

एक एक यदि मिलें "शक्ति" ग्यारह की उनमें आती है ।
इसी नीति का पालन हमको गणित रीति सिखलाती है ॥
भिन्न भिन्न ये प्रान्तिक[1] भाषा मिलें प्रेम से विधि अनुसार ।
एकादश गुण बल से होगा फिर यह वर सिद्धान्त प्रचार ॥१०॥

मुझे बोलने वालों की संख्या भारत में इतनी है ।
अन्य अन्य भाषा भाषी जन की कुल संख्या जितनी है ॥
पुनः प्राकृतिक विधि से मैं हूं जेष्ठा सभी भाषाओं में ।
है सर्वोच्च अभ्युदय मेरा राष्ट्रोन्नति आशाओं में ॥ ११ ॥

है मेरी लिपि देवनागरी दोषहीन शुचि, विगत विकार ।
सरल सहज है अल्प कष्ट से साध्य, पुनः प्राचीन अपार ॥
जैसी जाती लिखी पढ़ी वैसी ही जाती है तत्काल ।
नहीं अनर्थ अर्थ का इसके होता कहीं कभी विकराल ॥ १२ ॥

परम पुरातन संस्कृत भाषा लिखी इसी में जाती है ।
अपनी प्रकृत सरलता से वह "बालबोध" कहलाती है ॥

---

[1] प्रान्तिक भाषाओं में

किसी प्रान्त या किसी देशवासी हो गोरा या काला,
दो दिनमें वह अहा ! सीख सकता इसकी सु-वर्णमाला ॥१३॥

‡प्रान्तिक भाषा लिपि में संस्कृत लिखती है तेरी सन्तान।
वह मेरी लिपि में संस्कृत लिख दे मुझ हिन्दी को सम्मान॥
बङ्ग विश्वविद्यालय जिसमें है प्रचलित यह नियम नवीन।
संस्कृत लिखने को कृपया वह करलें नियत लिपि प्राचीन ॥१४॥

ऐसा करने से भारत का सब प्रकार होगा उपकार।
पुनः राष्ट्र-लिपि संस्थापन का खुल जावेगा उत्तम द्वार॥
कृष्ण स्वामि भूदेव मुकर्जी, मित्र शारदा चरण तथैव।
मेरी लिपि की सर्वश्रेष्ठता करते हैं स्वीकार सदैव ॥ १५ ॥

तेरे प्रिय सुत दे सहाय यदि मुझ पर प्रेम दिखावेंगे।
भारत उन्नति के पथ में वे बड़ी सुगमता पावेंगे॥
अधिक न वे मेरी लिपि का प्रचार करना करलें स्वीकार।
कई अंश में खुल जावेगा इससे राष्ट्रोन्नति का द्वार ॥ १६ ॥

तुझे देख अपनाते मुझको फिर उत्कल द्राविड़ तैलङ्ग।
आदर देंगे बहिन ! हर्ष से पुलकित होगा मेरा अङ्ग॥
है यह सुविदित भारत में है मेरी व्यापकता सब ओर।
विदित विश्व में है मेरी सारल्य तथा गुरुता सब ओर ॥१७॥

बङ्ग निवासी या उत्कल के वासी जब होते हैं क्रुद्ध,
तब वे मुझ हिन्दी में ही करने लगते हैं वाचिक युद्ध।

---

‡ बंगाल।

उसी भांति द्राविड़ तैलंगी महाराष्ट्र गुर्जर वासी।
तीर्थों में निज भाव प्रकाशन हित बनते हिन्दी भाषी ॥१८॥

एक भांति या अन्य भांति वे करते हैं मेरा सम्मान।
यदि स्वीकार करें वे मुझको तो होगा सबका कल्याण॥
उन्नति हो स्वदेश की, हममें जातीयता शीघ्र हो जात,
हिन्दी, हिन्दवासियोंकी, मैं बनूं राष्ट्र भाषा विख्यात ॥ १९ ॥

मैं यह कहती नहीं कि केवल मेरा ही आराधन हो।
अन्य अन्य प्रान्तिक भाषाओं का मेरे हित त्यागनः हो॥
यह न कभी हो सकता है इससे न भलाई होगी लेश।
ऐसा कथन ऐक्य के बदले बहिन! बढ़ा देवेगा द्वेष ॥ २० ॥

घर में जननी जन्म दात्रि माता के रहते भी क्या लोग।
निज रानी की पूजा करने में न लगाते हैं मन-योग?
उसी भांति मैं रानी, प्रांतिक भाषाएँ ज्यों माता है।
नीति निपुणता निष्ठा नवनिधि, नूतन निर्मल नाता है ॥ २१ ॥

मेरे कुछ सत्पुत्रवरों ने सम्मेलन का करके साज।
तेरे इस विद्यानगरी में किया बहिन! अधिवेशन आज॥
इन की मातृभक्ति को लखकर दे तू इनको यह आशीष।
तुम सबकी शुभ इच्छाओं को पूर्ण करें मंगलमय ईश ॥ २२ ॥



हिन्दी साहित्य सम्मेलन (कलकत्ता) के अधिवेशन में पठित।

* नीलध्वज के प्रति जना ‡।



हृद्कम्पकारी रण वाद्य घोर है बाजता क्यों नृप-द्वार-ओर?
सरोष क्यों बोल रहे तुरङ्ग? निर्घोष क्यों हैं करते मतङ्ग?
आकाश में क्यों उड़ती विशाला आकाश चुम्बी नृप-केतु माला?
क्यों राज सेना तव साभिमान हुँकारती केसरि के समान?
क्या साजते हो रण साज वीर- सदर्प, या पुत्रवर प्रवीर-
-की मृत्यु काही बदला चुकाने चले प्रभो तत हिया जुड़ाने!
है वीर का काम यही प्रधान स्वहस्त में ले धनु और बाण
विदारना दुर्धर शत्रु वक्ष या प्राण देना रण में समक्ष॥
जाओ प्रभो फाल्गुणि शीश छेदो जाओ प्रभो फाल्गुणि वक्ष भेदो
उसे शरों से कर खंड खंड शोकाग्नि मेटो उर की प्रचंड॥
गजेन्द्र जैसा कर घोर घोष कृपाण ले के कर में सरोष
किरीट का दर्प दलो तुरन्त संग्राम में हे नृप वीर्यवन्त

* * * *

काटा हुआ सव मुंड किरीटि मुंड त्रिशूल पेले जय वीर चंड
-स्वगेह आओ तवही कराला बुझे जनाकी-सुत-शोक ज्वाला!
न पार्थका मुंड सकूं विलोक तो शान्ति हो क्या यह पुत्रशोक!

---

‡ माहेश्वरी पुरी के युवराज नीलध्वज राजा के पुत्र प्रवीर ने पाण्डव कृत अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ा। इससे अर्जुन ने प्रवीर को युद्ध में मार डाला। महाराज नीलध्वज पार्थ से युद्ध में पराङ्मुख हो कर सन्धि करने लगे। पुत्र शोक कातरा नीलध्वज की महिषी ने तब अपने पति के पास यह पत्र प्रेषण किया।

है जन्म में मृत्यु यही निदान संसार में है विधिका विधान।
सत्पुत्र मेरा सुमति प्रवीर महा प्रतापी रण धीर वीर॥
स्वशत्रुसे सम्मुख युद्ध ठान किया महा इन्द्र पुरी प्रयाण।
तो क्यों वृथा शोक करूं तदर्थ था पुत्र जो वीर रथी समर्थ॥
पालो मही, क्षात्र सुकर्म पालो प्राणेश! राजोचित धर्मपालो।
आनन्द में मग्न सभा तुम्हारी. है व्याप्त वंशी-ध्वनि मोदकारी
हैं नर्त्तकी नृत्य करें विनीत हैं गा रहे गायक वृन्द गीत।
सगर्व राज्यासन पै तुम्हारे बैठा हुआ है धनु बाण धारे॥
स्व पुत्र हन्ता रिपु पार्थ पापी न लाज आती तुम को तथापि?
है पार्थ अभ्यागत तुल्य आज महा सभा में धिक धीर राज!
सहर्ष जोड़े तुम युग्म पाणि पूजो उसे हा! कह मिष्ट वाणी
स्व दुःख गाथा किससे कहूं मैं अपार निंदा जग में सहूं मैं।
खो पुत्र को क्या भय ज्ञान हीन हुए सुनीलध्वज भूप दीन॥
दुर्दैव ने क्या सब पुत्र छीन. किया तुम्हें भी अब शक्ति हीन
होती न जो बात यही यथार्थ पूजा न जाता यह नीच पार्थ!
स्व मित्र के कोमल युग्म पाणि के,तुल्य हा हा कह मिष्ट वाणी
प्रवीर रक्ताङ्कित पार्थ हाथ छूते कहो क्यों कर आप नाथ!!
स्व पुत्र हन्ता कुल नाश कारी छली निधर्मी रिपु दुष्ट भारी।
है पार्थ पै रोष तुम्हें नहीं क्या?. है क्षात्र का धर्म कहो यही क्या
कहां तुम्हारा धनु और बाण. कहां गदा शूल कहां कृपाण!
कहां तुम्हारी बल धीरता है कहां तुम्हारी रण धीरता है!
न शत्रु के वक्ष विदार हाय संग्राम में. आप उसे बुलाय।
प्रसन्न हो क्या करते सुमिष्ट आलाप द्वारा तज धर्म इष्ट॥
कहो कहें क्या तुमको नरेश! फैले कथा जो यह देश देश।

संसार के धार्मिक छत्र धारी विचार देखो यह बात सारी ॥
सुना कि नारायण तुल्य जान हो पार्थ को पूज रहे सुजान ।
है किन्तु स्वामी यह भूल भारी विचार देखो तुम छत्र धारी ॥
कहो मुझे क्या गुण देख नाथ हो पूजते हो तुम जोड़ हाथ ।
या दैव का है उलटा विधान मनुष्य को है जिस का न ज्ञान॥
देके मुझे धीर रथी सुपात्र गुणी प्रतापी सुत एक मात्र ।
हा हन्त छीना उसने उसीको दिया महो दुःख अपारजीको ॥
था मान हीं शेष बचा हमारा है कान्त सो भी इस पार्थ द्वारा
समूल होगा अब क्या विनिष्ट मुझे इसीसे दुख है घनिष्ट ॥
आचार्य है पार्थ कुवंश का जो पूजाई होगा तब कान्त क्या सो?
कहो मुझे क्या गुण कान्त देख हैं ग्राह्य बातें उसकी विशेष ॥
मैं जानती हूं यह भी नरेश कि बोलते हैं सब देश देश-
कि है प्रतापी रथिराज पार्थ न किन्तु वाणी यह है यथार्थ॥
विवेचना कान्त करो, कदापि महारथी है नहिं पार्थ पापी ।
होता रथी तो धर छद्म वेश क्या द्रौपदी को हरता नरेश'
महारथी लक्ष नृपाल वीर प्रतापशाली मति मान धीर ।
क्या द्रौपदी को सकते न छीन न पार्थ होता जब, धर्म हीन !!
विचार के ब्राह्मण भीरु पार्थ- से कौन योद्धा लड़ता यथार्थ
देता न धोखा नृपमंडली को पाता कभी क्या यह द्रौपदी को
सहाय जो श्री हरि का न पाता तो पार्थ क्या खाण्डवको जलाता
न योग देता जब श्री शिखण्डी तो पार्थ पापी कपटी घमण्डी
पितामह क्षत्र कुल प्रदीप- -को मार क्या हा! सकता महीप
स्व पूज्य आचार्य पिता समान प्रसिद्ध थे द्रोण रथी महान ॥
उन्हें विनाशा यह पार्थ, भूप छल किया हा! करके अनूप।
थे सु प्रतापी रण अग्र गण्य महा रथी कर्ण स्वनाम धन्य

अन्याय कैसा करके अपार उन्हें विनाशा यह पार्थ छार !
महारथी का यह धर्म है क्या कहो यही क्षत्रिय कर्म है क्या ?
करें सदा जो छल का प्रयोग क्या वीर हैं वे शठ नीच लोग
जो जाल में कौशल से फँसाय मृगेन्द्र को व्याध वधे कदापि
तो क्या कभी वीर रथी कहाय संसार में भी वह व्याध पापी !!
नरेश क्या है तुमको न ज्ञात कहूं तुम्हें क्या फिर और बात
जो छोड़दें लोग स्वधर्म इष्ट क्या वीर हैं वे नर भी निकृष्ट
कहां तुम्हारा वह वीर दर्प ? कहां तुम्हारा वह मान दर्प ?
क्यों व्यर्थ होके अब भाग्य रंक, लगा रहे हो सिर में कलंक !
है मृत्यु से भी यह के कलंक अहो ! बचाओ इससे स्व अंक
न सत्य से पांव कभी हटाओ, स्वयं मरो या रिपु को भगाओ ।
हा कौन सा पातक हेतु आज वीराग्र नीलध्वज राज राज
है पार्थ आगे नत शीश मान हा राम ! होके हत बुद्धि ज्ञान !!
श्वपचाल के पाद प्रलित धूल- -से होय जो भूषित विप्र भाल
तो घोर अन्याय तथा समूल असह्य है क्या नहिं हे नृपाल ·
है किन्तु ऐसा मय दोष देना संसार में व्यर्थ कलंक लेना
नृपाल स्वामी तुम हो मदीय अतः सदा हो मम पूजनीय
जो दोष दूं व्यर्थ तुम्हें नरेश तो पाप होगा मुझ को अशेष ॥
तो भी तुम्हारे हित हेतु नाथ! है धाष्टर्य मेरा यह जोड़ हाथ ।
मैं आर्य्य कन्या कुल कामिनीहूं पुनः अधीना तव भामिनीहूं
अतः अशक्ता अति सर्वथा मैं कैसे मिटाऊं मनकी व्यथा मैं !!
किरीटि ने दुःख मुझे दिया हा! सन्तान हीना मुझको किया हा!
मदीय भर्ता तुम वीर राज दुर्दैव से हो अति वाम आज !!
खो पुत्र को हाय न क्यों मरूं मैं, संसार में जीवन क्यों धरूं मैं !

हुआ जना कीर्ण जगत् विशाल
ललाट में था विधिने लिखा जो
हा! पुत्र प्राणोपम हा! प्रवीर?
इसीलिए क्या सह कष्ट नाना
स्व गर्भ में थी किस जन्म में मैं
तूने दिया हा! यह ताप वत्स!
आशालता को इस दुःखनीकी,
हुआ अरे तू इस भांति मुक्त?
रे आँख रो रो अब वारि धारा
पोंछे तुझे कौन? अरे अबोध!
तुझे जुड़ावें, कह, कौन आज
है पार्थ के भीषण बाण द्वारा
अरे पड़ा है! विल में लुकाके
अरे मणीहीन फणी अनाथा!!
जाओ तुम्हारे चिर मित्र पार्थ-
जाओ कुरुक्षेत्र प्रसन्नचित्त!
चली तुम्हारे घर से परन्तु
हूं क्षात्र वंशोद्भव वीर बाला
निर्लज्ज होके, धर धैर्य्य हा! हा!
विश्राम लूँगी अब मैं अनन्त
हूँ माँगती त्वत्पद की, नृपाल!
स्वामी! करोगे, फिर से पुकारो
प्रतिध्वनी उत्तर दे तुम्हें तो

मेरे लिए निर्जन है नृपाल!
कालान्तमें आज अहो फला सो
तेरे बिना प्राण धरें न धीर!
तुझे रखा था दश मास वत्स
दोषी, कियाथा तव पाप क्याजो
मुझे, उसी के हित क्या विनाश
हा! वत्स माता ऋणभार सेक्या
क्या वत्स! तेरे मनमें यही था!
क्यों है बहाती इस भाँति आज
है प्राण तू भी जलता वृथा क्यों
सुमिष्ट वाक्यामृत-वारि द्वारा!
शिरोमणी ही तव खण्ड खण्ड
सखेद त्यागो निज प्राण रो रो
जाओ प्रभो क्षात्र कुलप्रदीप
-के सङ्ग नीलध्वज धीर श्रेष्ठ
स्वपुत्र के हेतु जना अभागी
हूंवीर क्षत्री कुल की वधू मैं।
कैसे सहूं मैं अपमान ऐसा
श्री जान्हवी में करके प्रवेश
अतः विदा मैं चिर काल हेतु
जो लौटे के राजपुर प्रवेश
"जना कहां है" कहके कभी जो
"जना कहाँ है" कह के नृपाल!†

†यह कविगुरु श्री माइकेल मधुसूदन दत्त कृत वीराङ्गना काव्य के 'जना पत्र' नामक सर्ग का अनुवाद।

जीवन्मरण ।

दुष्टों की दुष्टता की प्रकट यह हुई मंत्रणा गुप्त आज ।
कीर्ति ख्याति प्रतिष्ठा सकल यह हुई हन्त ! हा ! लुप्त आज ॥
निन्दाके भक्ष्य होके अति विषम व्यथा चित्त पाता सदैव ।
जीते जी पा चुका मैं मरण दुख यहां हाय ! दुर्दान्त दैव ॥१॥

बातें क्या मैं बताऊं अबतक जगमें प्राण धारे हुआ हूं ।
मर्यादा को गुमा मैं धिक धिक यह यों मान धारे हुआ हूं ॥
मातः पृथ्वी मुझे क्या फटकर अपनी गोद में ठौर दोगी ।
हा हा हा हन्त ! हा हा ! बढ़कर इससे मृत्यु क्या और होगी ॥२॥

जाते जो प्राण मेरे निकलकर अभी क्लेश पाता न और ।
निन्दा व्यापी न होगी इस तरह कहीं देखता मैं न ठौर ॥
होती है आत्म निन्दा रह रह मन में चैन पाता न जी है ।
जीना भी तो यहां हा ! विषम विषमयी मृत्यु है, मृत्यु ही है ॥३॥

क्या मेरे पातकों का प्रतिफल यह है ? तीव्र से तीव्र हाय !
पापों का घोर मेरे प्रतिफल यह है, न्याय है सत्य, न्याय ॥
जीते जी हाय ! देना मरण जगत में दण्ड है चण्ड, दैव !
पापों की ओर देखूं निज जब तब तो ग्लानि होती सदैव ॥४॥



हृदयोद्गार।

जीवन का है लक्ष्य नहिं, भौतिक सुखका भोग।
विषय वासना तज करो, परम शान्ति उपभोग॥
परम शान्ति उपभोग प्रेमके बल से होगा।
आर्योंने है इसे पूर्ण मात्रा में भोगा॥
आर्यों को आचार्य कर तत्वशान्ति का सीखलो।
पाश्चिमात्य देशो अहो, स्वत्व शान्ति का सीखलो॥१॥

हम सबके कर्ता वही विश्वनाथ जगदीश।
भाई भाई हम सकल परम पिता है ईश॥
परम पिता है ईश, सकल हम भाई भाई।
उचित न हम में भ्रात ! व्यर्थ की कपट-लड़ाई॥
भूल स्वार्थ में बन्धुका रक्त बहाना पाप है।
बन्धु ग्रासको छीनकर छलसे खाना पाप है॥ २॥

ईश्वर का आवास है दीन जनों के द्वार।
ईश्वर को ढूंढ़ो वहीं भ्रातृ-भाव उर धार॥
भ्रातृ-भाव उर धार प्रेम समता की दीक्षा,
ग्रहण करें हम सभी, पथ्य की अनुपम शिक्षा॥
निर्बल जन पर जो सबल हो, करता अत्याचार है।
करता ही है उस जाति का, ईश शीघ्र संहार है॥३॥



अन्योक्तियाँ ।



मेघ

कृषक होते हैं विकल, ये खेत सूखे जा रहे ।
गगन में हैं सघन घन हा! जल-बिना मँडरा रहे ।
तू कहाता है जलद! संसार में दानी बड़ा,
कर लिया है आज तूने हृदय क्यों अपना कड़ा ! ॥ १ ॥

लाख बे-मौके लुटावे, लाभ उससे कुछ नहीं
समय पर है एक मुद्रा लक्ष से बढ़ कर कहीं !
सोच तू इस बात को, हो दूर धन अभिमान से
इन्दिरा के वाहनों का बैर है क्या ज्ञान से ? ॥ २ ॥

भारतीय कृषक

इन पुरखौती हल बखरों से कृषक! उम्र तुमने काटी ।
भूमि जोतने, खाद-डालने की न गई यह परिपाटी ।
सोलह आना फसल लुवें यदि इन्द्र करेंगे जीवनदान ।
यह कहते तुम भाग्य भरोसे बैठो, इधर मररहीं धान ॥ ३ ॥

प्रथम मूर्खता, बहुकुटुम्बता, पुनः विषम दारिद्र्य अपार
फिर दीलाद साहुकारों का शोणित-शोषक गुरु ऋण भार,
करे कहां से निज उन्नति तू कृषक! जलाशय बना महान
वैज्ञानिक विधि से कृषि होगी भारत में भी क्या? भगवान ! ॥ ४ ॥

सिंह

न कर घृणा तू सिंह ! शृगालादिक लघु वन जीवों से नित्य
लघु गुरु का जग में जोड़ा है, अति अद्भुत हैं हरि के कृत्य।
पड़ा जाल में विकल बड़ा तू गरज रहा था जब खो ज्ञान,
भूल गया क्या किसके द्वारा गये बचाये तेरे प्राण ? ॥ ५ ॥

यदि मृगराज ! स्यार आदिक को देगा तू कुछ आदर मान
है आश्चर्य न, मौके पर वह कर बैठे तेरा अपमान।
इसी लिए उनका शासन है उचित, सिंह ! तव गौरव-योग्य
पर उच्चाशय गजराजों का दमन सर्वथा हुआ अयोग्य !॥ ६ ॥

रत्नाकर

अवगुण तुझमें देख अनेकों तुझे दोष देते हैं लोग,
गुण हैं उनको नहीं दीखते जिन्हें लगा पर-निन्दा-रोग।
रत्नाकर तू रत्नाकर है, क्षार हुआ जल तो क्या सोच !
"लवण बिना सब रस फीका" यह कहते बुधजन तज संकोच॥७॥

रत्नाकर ! तेरे दोषों को प्रकट किये यदि कवि ने सर्व
उसे देख तू सच है या नहिं, तजकर अपने गुण का गर्व।
महज्जनों में भी दोषों का होना संभव है सब काल
प्रकृति पुरुष से जात हुई यह द्वन्दमयीहै सृष्टि विशाल ॥ ८ ॥

स्नेहलता
अर्थात
अबलाओं पर अत्याचार !

कन्या हित सहते विविध दुःख पितु माता ।
दे कन्या जन्म न भारत में तू, धाता ! । टेक ।

भारत के मानव दानव-प्रकृति दिखाते ।
भारत के मानव हिंसा प्रकट सिखाते ।
भारत के वासी ज्ञान धर्म सब भूले ।
भारत के वासी मान कर्म सब भूले ।
अबलाओं के दुख के न रहे अब त्राता ।
दे कन्या जन्म न भारत में तू, धाता ! ॥ १ ॥
शिक्षित सुसभ्य जग-पूज्य जाति बंगाली ।
कन्याओं के हित दिखा रही कंगाली ।
तब अपढ़ अनाड़ी जाति घरों में भाई ।
क्यों हो न सुता सेवा में अति कठिनाई ।
भगिनी हित भिक्षुक बने अनेकों भ्राता ।
दे कन्या जन्म न भारत में तू, धाता ! ॥ २ ॥
ब्राह्मण हो सब अब भूले निज ब्राह्मणता ।
धन आगे रही न धर्म जाति की ममता ।
द्विज स्वार्थ अंध हो त्यागे सारी समता ।
हिंसा की सब में बची एकही क्षमता ।
दुर्बल को दहना सबल नरों को भाता ।
दे कन्या जन्म न भारत में तू, धाता ! ॥ ३ ॥

हम दो हज़ार का टीका जब गिन लेंगे।
निश्चय विवाह होने का उस दिन देंगे।
ढाई सौ की बारात हमारी भारी।
सब की हो पूरी पूरी खातिरदारी।
यों निधन पिता है नाहक मारा जाता।
दे कन्या जन्म न भारत में तू, धाता! ॥ ४ ॥
ए हिन्दू मेरे बन्धु यशों धर चारो।
अब तो भी अपने फूटे नयन उघारो।
धन तृष्णा में पड़ निज को निज मत मारो।
नर हो कुछ करुणा हृदय बीच तुम धारो।
देखो देखो यह देश रसातल जाता।
दे कन्या जन्म न भारत में तू, धाता! ॥ ५ ॥
ऐ आर्यो ! मैं यह स्नेहलता† जलती हूं।
कर्त्तव्य पूर्ण कर अम्ब निकट चलती हूं॥
तम हरे तुम्हारे हृदयों का, यह ज्वाला।
दुख सहैं न घर घर आर्य्य षोड़शी बाला॥
मेरे हित पैतृक घर था बेचा जाता।
दे कन्या जन्म न भारत में तू, धाता॥ ६ ॥

---

† स्नेहलता कलकत्ते के एक कुलीन पर निर्धन ब्राह्मण की कन्या थी, इसका पिता लाख यत्न करने पर भी इसके लिए कोई ऐसा सुयोग्य 'वरपात्र' न पा सका जो बिना रुपये लिये स्नेहलता से विवाह करने को प्रस्तुत होता। लाचार उसने अपने घर को बेचकर कन्या के लिए वर खरीदने का संकल्प किया। यह बात स्नेहलता को असह्य हुई। उसने अग्नि द्वारा प्राण विसर्जन किये।

जय तिलक।

जय राजर्षि प्रधान ज्ञान-आगर गुन सागर।
जय जय प्रतिभावान परम विद्वान् उजागर॥
जय जय करुणासिन्धु दीन के बन्धु प्रेमघन।
जय भारत भुवि इन्दु करन आलोकित जन-मन॥
जय वेद और उपनिषद के सारामृत बरसा करन।
जय जय विदेश विद्वान्वर चित चकोर सन्तत हरन॥१॥

जय स्वदेश उद्धार हेतु शुचि व्रत हिय धारन।
प्रजा स्वत्व हित न्याय-युक्त आन्दोलन कारन॥
जय गम्भीर विचार राजनैतिक परसारन।
जय जय जन मन बीच धर्म्म को दीपक बारन॥
जय कर्म्मवीर सच्चरित वर, न्याय निरत, उन्नत-हृदय।
धृति सहिष्णुता निर्भीकता के मूर्तिमान भगवान जय॥२॥

जय आदर्श ग्रहस्थ गृहीगण को संचालक।
जय गङ्गासुत सदृश सुभग भीष्म प्रणपालक॥
जय तन से मन से धन से भारत सुख साधक।
जय वाणीसुत सुभग स्वावलम्बन-आराधक।
जय आर्य विगत गौरव सकल प्रकटावन छितिपर अमल
जय भारत-दुर्गति सघन वन दहन करन अनुपम अनल॥३॥

जय ब्राह्मण कुल दीप रतन भारत उज्ज्वलतर।
नव उमङ्ग नित भरन मृदुल युवकन हिय भीतर॥
जय अति सरल सुभाव, सौम्य मूरति चित-चोरन।
परमुख जोहन निन्द्य प्रथा को जड़ सों तोरन॥

जय हरिश्चंद्र सम सत्य प्रिय, टरत सत्पथ सों पग न
धैर न हूं जाको सुयश सुठि गान करत नित मनहिं मन ॥४॥

जबलौं जग में राजनीति प्रति सांचो आदर।
जब लौं भुवि स्वातन्त्र्य स्वत्व को तत्व उजागर॥
जब लौं आरज धर्म्म कर्म्म मर्मज्ञ धीरवर।
जब लौं सत्य स्वदेश भक्ति पृति हृदय पटल पर॥
तबलौं वसुधा पर सुयश तव रहहि अटल अविचल अमर
"जय जयति तिलक" कहि घोषिहैं पुलकित चित सुरनागनर५

स्वावलम्बनाचार्य आर्य कुल विशद वंशधर।
अहो राजभूषि तिलक! तिलक भारत को शुभतर॥
काह आंखि सों भई ओट जो पै तुव मूरति!
मन मन्दिर महँ बसत हमारे जब तुम नित पृति॥
शिक्षा दीक्षा आदेश और सुठि दर्शित पथ तव सकल
पृति भारत वासिन हृदयपर रहिहैं नित अङ्कित अटल*॥६॥



कर्म्मवीर मिस्टर गाँधी।



शत शत बाधा-विघ्नों से भी वीर-हृदय कब रुकता है।
नीच नरों के सम्मुख आर्य-धीर-मस्तक कब झुकता है॥
'देशमान' रखने में तुमने बड़ी अजब हिम्मत बाँधी।
जुग जुग जीओ कर्म्मवीर तुम देशभक्त मिस्टर गाँधी॥ १॥

---

* लोकमान्य तिलक के कारावास पर।

जब तक प्राण रहेंगे तन में, हम न बनें जीवन्मृत दास, ।
सत्य न्याय मर्यादा के हित त्यागेंगे सब भोग विलास ॥
जेल जाँयगे, क्षुधित रहेंगे, सहें सभी पानी आँधी ।
ऐसे व्रत के व्रती धन्य तुम देशभक्त मिस्टर गाँधी ॥ २ ॥

सभी जाति हो प्रजा-तन्त्र-प्रिय, पक्षपात का होवे नाश ।
ज़बरदस्त मत छीन सकें फिर दीन-जनों के मुख का ग्रास ।
भूतल में फिर रामराज्य हो कलियुग में आवे त्रेता ॥
कर्म्मवीर मिस्टर गांधी से न्यायनिष्ठ जय हों नेता ॥ ३ ॥

हिंसा प्रिय दानव-गण होवें धर्म्म भीरु मानव मृदु प्राण ।
मिटे द्वेष अन्याय, बनें सब काले गोरे एक समान ॥
शुभ समत्व का तत्व व्याप्त हो, रहे न कोई जित जेता ।
कर्म्मवीर मिस्टर गाँधी से न्यायनिष्ठ जय हों नेता ॥ ४ ॥

धन्य तुम्हारे तात-मात हैं, धन्य सुरम्य काठियावाड़ ।
बना आज यह जगत नेत्र में गौरव-गेह अन्य मेवाड़ ॥
जा विदेश-तुम बिना कौन ? निजदेश-हेतु सर्वस देता ।
जुग जुग जीओ, मिस्टर गाँधी, कर्म्मवीर भारत नेता ॥ ५ ॥

विनय ।



शुभ सुख सुगति सुमतिके सागर, शान्तिसद्म, स्वातन्त्र्य स्वरूप!
शील-शौर्य-सौरभ-शुचि-श्री-पति, शोभा शक्ति-समूह अनूप !
परम-पिता, करुणा वरुणालय, श्रद्धा स्नेह सुधा के स्रोत !
हो यह मेरा हृदय पूर्ण तव दिव्य प्रेम से ओतप्रोत ॥ १ ॥

सर्वशक्ति सम्पन्न ईश ! दे मुझे कृपा कर ऐसी शक्ति।
जीवनभर मैं मातृभूमि की सेवा ज्यों कर सकूँ सभक्ति॥
प्रीति सहानुभूति आदिक गुण लूँ तुझसे मैं नित्य उधार।
तजकर हिंसा स्वार्थ कलह छल, करूं हृदय से "जाति-सुधार" २

अनृत, दुष्टता, कुरुचि, कपटता द्रोह दंभ का कर संहार।
सत्य, साधुता, सुरुचि, सरलता, स्नेह शील का करूं प्रचार॥
क्रोध, विरोध, मोह हिंसा मद लोभ काम माया व्यभिचार।
कर न सकें मुझ पर या मेरे जाति-भाइयों पर अधिकार॥ ३॥

स्नेह मयी जननी का अनुपम दान "मातृभाषा" सुखमूल।
ज्ञान प्राप्त कर जिसके द्वारा हरते हैं हम "हिय के शूल"॥
उस हिन्दी—उस प्यारी हिन्दी भाषा की मैं भक्ति समेत।
सेवा किया करूं हे ईश्वर ! सदा सर्वदा शक्ति समेत॥ ४॥

नर्क यात्रा सम दुखदाई पाशव वृत्ति त्याग सब लोग।
रहें प्रेम से ईश ! करें शुचि शान्तिसुखामृत का उपभोग॥
अमृत मधुर जीवन यात्रा हो, भारत भू हो स्वर्ग समान।
हो सब पाप ताप दोषादिक विषय विकारों का अवसान॥ ५॥

मेरी कामना।

दीनदुखी रोगी लोगों की सेवा में मैं काटूं आयु,
उनके चिन्ता-शिशिर-ग्रस्त गृह में फिर बहे सौख्य मधु-वायु।
रात्रि दिवस मैं किया करूं निज बन्धु बान्धवों पर अति प्यार,
हो मेरा यह स्वार्थ सदा साधन करना पर का उपकार॥ १॥

दरिद्रता के विषम उदर में पड़े हुए हैं जो-जो लोग।
जीर्ण शीर्ण है तनु जिन सबका, जिन्हें सताते बहु विधि रोग॥
घृणा जिन्हें करते उनके जो जाति बिरादर हैं धनवान।
ऐसे देश भाइयों के हित वारूं मैं अपने धन प्राण॥ २॥

भाई माता पिता न जिनके जो हैं सभी भांति असहाय।
ऐसे दुखित अनाथ अनाश्रय नरनारी बालक समुदाय॥
हों मेरे आराध्य देवता, सेवा सुश्रूषा के पात्र।
उनके क्लेश मिटाने में हो तत्पर निशि दिन मेरा गात्र॥ ३॥

जो शैलाक्ष साहुकारों के पंजे में पड़ पाते कष्ट।
एक एक कर निज भू सम्पति करते परवश में पड़ नष्ट॥
घर पर रोते जिन कृषकों के बच्चे नित्य भूख से हाय!
उनके कष्ट निवारण का मैं यथाशक्ति नित करूं उपाय॥ ४॥

भाई भाई जो आपस में रात दिवस करते तकरार।
बने वकीलों के बन्दर जो उड़ारहे निज धन भाण्डार॥
मिथ्या छल विश्वासघात का जो करते हैं नित व्यवहार।
उन की मति गति को सुधार कर 'पंचायत' का करूं प्रचार॥५॥

नवयुग भावना।



शिक्षा-सङ्गीत गाओ इस नवयुग की शान्ति स्वाधीनता का!
आओ भाई! उड़ाओ छल मद तज के एकता का पताका!!
बीता हिंसा घृणा का समय अब लखो फूट का भाग फूटा!
छूटा आधीनता का भय, कलह कटा, दुःख का दुर्ग टूटा!! १

आशा उत्साह के ये वचन वर हमें दे रहे दिव्य शक्ति
ढाले देती नहीं क्या ध्वनि जय जय की प्राण में मातृभक्ति ॥
ईर्ष्या, तन्द्रा, अविद्या, अनृत, अघ भगे भीरुता, रोग, शोक।
आवेगा शीघ्र भाई! न उतर अब क्या विश्व में स्वर्ग लोक? २

भागी कुत्सा-अविद्या शुभ नवयुग का हो रहा सुप्रभात।
तन्द्रा आलस्य पूर्णा अब दुरितमयी है न बीभत्सरात ॥
प्रज्ञा की दिव्य कैसी प्रकट यह हुई है प्रभा पुण्यशाली।
होगा सद्ज्ञान रूपी उदित अब सखे! पूर्व में अंशुमाली ॥ ३ ॥

वर्णा-वैषम्य चिन्ता निशि दिन न हमें अग्नि सी ताप देगी।
अन्नाभावादि पीड़ा न सुगुणगण को हीनता से हरेगी ॥
भिक्षा या दासवृत्ति द्यूत तज विष सा लोग होंगे स्वतन्त्र।
होगी प्रेमानुकम्पा, विनय, सरलता, मुक्ति का मूल मन्त्र ॥ ४ ॥

"शिक्षा, दीक्षा, परीक्षा, नित परहित की धर्म है मुख्य मित्र!
पूर्वख्याति प्रतिष्ठा अमर विभव है जातियों का पवित्र" ॥
धारेंगे लोग सारे सतत यही शास्त्र-आदेश वाणी।
उद्धारेंगे दुखों से निज निज जनको हो स्वदेशाभिमानी ॥ ५ ॥

होगी वाणिज्य लक्ष्मी इस नव युगकी सिद्धि का दिव्य द्वार
लक्ष्मी का वास होगा प्रति भवन, मिटा दुःख दारिद्र्य-भार ॥
विद्या, विज्ञान-शिक्षा, कृषि, कल, कविता वृद्धि को प्राप्त होंगी।
मर्यादा, मान, ज्योत्स्ना सुगति सुकृति की लोकमें व्याप्त होंगी ॥६॥

सत्सेवा मातृ-भू की कर तन मन से लोग होंगे कृतार्थ।
धारेंगे त्यागधर्म, प्रणय, धृति, दया, त्याग पाखण्ड स्वार्थ ॥
पाटेंगे शान्तता से दिल हिल मिल के भाइयों के समान।
श्रद्धा से दान देंगे कठिन समय में बन्धु के हेतु प्राण ॥ ७ ॥

होती है सत्य ही की जय नित जग में सर्वथा सौख्य युक्त।
देता है हार-रूपी फल अनृत सदा दुःख से हो प्रयुक्त॥
शिक्षा पीयूष पूर्णा यह निज मनकी भ्रान्ति सारी हरेगी।
देके शान्ति स्वरूपा विजय-निधि हमें भाग्यशाली करेगी॥ ८॥

न्यायी कारुण्य सद्म प्रभु परम पिता हैं हमारे सहारा।
दीनों के बन्धु वे हैं कब नहिं उनने दुःखितों को उबारा?
रक्खो भाई उन्हीं के अभय-चरण में आश विश्वासपूर्ण।
दुःखों के साथ होंगे रुज, भय, पल में, विघ्न बाधादि चूर्ण॥९॥

देखेंगे दृश्य नाना सुरगण फिर भी आर्य स्वाधीनता के।
गावेंगे गान आहा! जय जय कहते वीरता धीरता के॥
देवों के हस्त द्वारा हम पर फिर भी पुष्प की वृष्टि होगी।
हे भाई! है न देरी भरत-वसुमती सौख्य की सृष्टि होगी॥ १०

समाप्त।



शुद्धि पत्र ।



पृष्ट	पद्य	अशुद्ध	शुद्ध
३	८	उषीर	उशीर
४	१०	प्रतिमा	प्रतिभा
५	७	विश्मित	विस्मित
[illegible]	१२	गंभीर	गभीर
६	६	पद्य कुलके	पद्म
१०	१२	पाई नहीं	पाई मही
१४	३८	अतिषय	अतिशय
१८	२	आजको	आज क्यों
१८	३	नव-निध	नव-निधि
१८	४	प्रभा-ऊष्म	प्रभा-अश्म(रत्नविशेष)
१८	४	भष्म पूर्णा	भस्म पूंर्णा
२०	६	ज्वलि	ज्वाल
३० पंक्ति	४	निवाशी	निवासी
३० ,,	१६	मृत्यु	भृत्य
३२	१	हाड़ सब	हाड़ मय
३५	१०	नहीं करें गे	नहीं करेंगे ?
३६	१	दुःख की वास	दुःख का घास
३७	६	जनेव	जनेउ
३८ पंक्ति	१३	प्राणी सम	प्राणोपम
४१ ,,	१२	मैं हैं इसका	मैं इस का
५२	११	परवा है	परवाह
५४ ,,	५	आँगन सा	आँगन सा ये

पृष्ठ	पद्य	अशुद्ध	शुद्ध
५६	६	जल	छल
५७	१	छात्रो	हे छात्रो !
६२	पंक्ति ३	शुषमा	सुषमा
,,	,, १६	अमली	इमली
६३	,, १४	अधम कहहु को	कहहु अधम को
६४	३	निम्नानवे हैं	नब्बे हैं, देखा,
७१	,, १३	जल से	जल में
७३	,, २१	त्राश	त्रास
७६	,, १४	यहाँ १ पंक्ति छूट गई है। अतः दोनों पंक्तियाँ लिखी जाती हैं:—	

शत पंच वत्सर के दुखद दासत्व जीवन ने दहा !
शुचि बंग को है शौर्य वीर्य विहीन कर डाला महा

पृष्ठ	पद्य	अशुद्ध	शुद्ध
८४	,, ११	हिन्दू और	हिन्दू अरु
८८	,, १७	कञ्चन मई	कञ्चन मयी
९६	,, ६	तत	तात
९७	,, १८	निधर्मी	विधर्म्मी
९८	,, १०	पूजाई	पूजाई
१००	१२	शिरोमणी ही	शिरोमणी हो
१०७	४	जड़लों तोरन	जड़सों तोरन
१०८	,,	बैर न हूँ	बैरिन हूँ
११०	५	नर्क यात्रा	नर्क यातना
११२	५	सारे सतत	सारे भय सतत

इनके अतिरिक्त मात्राओं के टूटने की कुछ अशुद्धियाँ रहगई हैं उन्हें पाठक सुधार कर पढ़ें ।

गृहिणी भूषण।

मूल्य आठ आना

स्त्रियों की वास्तविक शोभा कीमती कपड़ों और जेवर से नहीं होती किन्तु उत्तम गुणों के सीखने से होती है । इस पुस्तक में स्त्रियों के योग्य उत्तमोत्तम २४ गुणों का वर्णन बड़ी खूबी के साथ सरल भाषा में किया गया है। पति प्रेम, सतीत्व रक्षा, स्वजन वात्सल्य, चरित्र गठन, गृह-प्रबन्ध, माता का कर्तव्य, गर्भवती का कर्तव्य, सन्तान पालन आदि कई बातों का समावेश करके यह भूषण तैयार किया गया है। इस पुस्तक के उपदेश से आपका घर स्वर्गधाम बनजायगा। सुन्दर चिकने कागजपर बम्बई की छपी हुई १३२ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल आठ आना। मंगाकर देखिए, आप अवश्य प्रसन्न हो जायंगे।

जर्मनी के विधाता।

मूल्य चार आना

इस पुस्तक में जर्मनी के उन २४ आदमियों की जीवनी और कारनामे हैं जिन्हों ने जर्मनी को इस उन्नति के शिखर पर लाने के लिए तन मन धन से कोशिशकी है। इस पुस्तक के पढ़ने से आप को मालूम हो जायगा कि राष्ट्र की उन्नति कैसे होती है। साथही साथ आप यह भी समझ जांयगे कि वर्तमान युद्ध क्यों हुआ। जल्दी से मंगवाइए बहुत थोड़ी कापियां बची हैं नहीं तो पीछे से पछताना पड़ेगा पुस्तक हाथों हाथ बिकरही है।

देशभक्त हरदयालजी
के
स्वाधीन विचार।

मूल्य चार आना

भारत के शिक्षित समुदाय में ऐसा कौन है जो देशभक्त हरदयालजी को नहीं जानता ? उनके लेख अंग्रेजी के मासिक पत्र 'माडर्न रिव्यु' में सभी देश हितैषी बन्धु बड़े चाव से पढ़ते रहे हैं। परन्तु वे लेख सर्व साधारण तक नहीं पहुंच सकते थे। कुछ लेख हिन्दी में अनुवादित होकर निकल चुके थे और कुछ अन्य लेखों का अनुवाद करके मैंने सबको "स्वाधीन विचार" नाम से पुस्तकाकार छाप दिया है इस पुस्तक में नौ लेख हैं। एक स्वयं हरदयालजी का लिखा हुआ है और आठ अनुवाद हैं। अब आप 'स्वाधीन विचार' की कापियां खरीद कर सर्व साधारण में प्रचार कीजिए। यदि आपने मेरा उत्साह बढ़ाया तो मैं इसका दूसरा भाग भी आप की सेवा में भेंट कर सकूंगा।

देश सेवकों को इस पुस्तक का प्रचार बढ़ाना चाहिए।

भारत के आदर्श बालक।

मूल्य चार आना।

इस पुस्तक में बहुत से धर्मवीर बालकों के जीवन चरित हैं जिन्हों ने धर्म के लिए अपने क्षणभंगुर प्राणों को अर्पण किया है। यदि आप अपनी सन्तान को धर्मवीर बनाना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य मंगाइए।

मेरे गुरुदेव

अर्थात्

श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस ।

मूल्य चार आना ।

श्रीरामकृष्ण परमहंस के शिष्य, जगत प्रसिद्ध श्री स्वामी विवेकानन्द जी ने अमेरिका के न्युयार्क शहर में अपने गुरु देव के सम्बन्ध में My master नाम की जो वक्तृता दी थी, इस पुस्तक में उसी वक्तृता का अनुवाद है । स्वामी जी ने अपने गुरुदेव के सम्बन्ध में अमेरिका निवासियों के सामने क्या कहा है यह जानने की किसे इच्छा न होगी ? इस पुस्तक में परमहंस जी के अलौकिक और कौतूहल पूर्ण धर्म-मय जीवनरहस्य का वर्णन और उनके धर्म सम्बन्धी मन्तव्यों का अच्छा दिग्दर्शन किया गया है । पुस्तक में परमहंस जी का एक सुन्दर हाफटोन चित्र भी दिया गया है !

भारत गीताञ्जलि ।

मूल्य चार आना

इस पुस्तक में श्रीयुत माधव शुक्ल रचित देशभक्ति पूर्ण पद्यों का संग्रह है । इस पुस्तक की उत्तमता के विषय में इतनाही कहना अलम होगा कि कुछ ही महीनों में इसकी प्रथम संस्करण की २००० प्रतियां चटनी हो गई और बहुत शीघ्र ४००० प्रतियों का दूसरा संस्करण निकाला गया । उस में से भी बहुत सी प्रतियां बिक गई हैं । शीघ्रता कीजिए नहीं तो तीसरे संस्करण के लिए ठहरना पड़ेगा ।